Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद और वैदिक काल

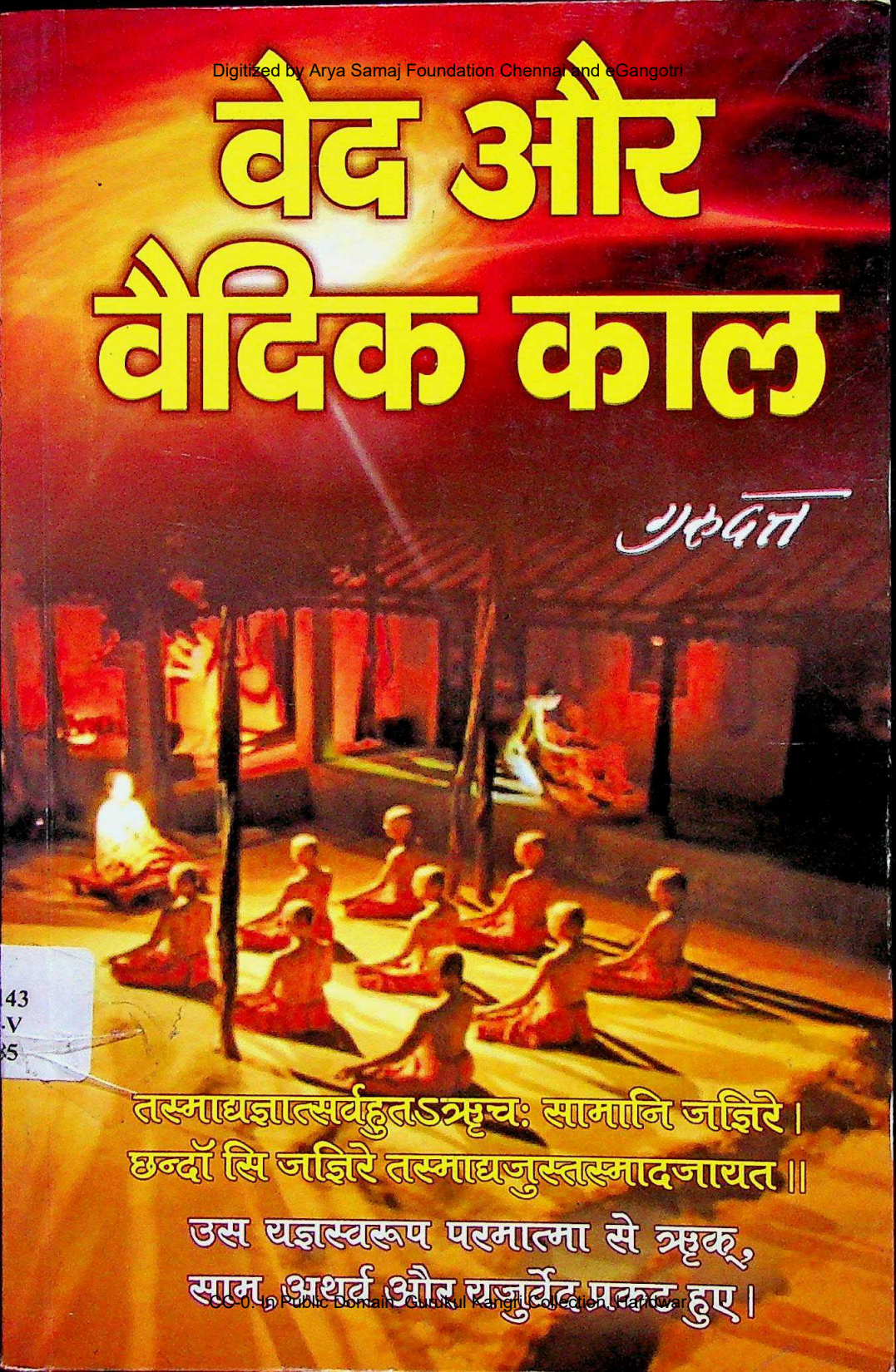

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

उस यज्ञस्वरूप परमात्मा से ऋक्,
साम, अथर्व और यजुर्वेद प्रकट हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167985
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

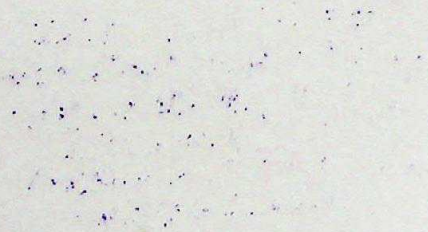

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद और वैदिक काल

लेखक : गुरुदत्त

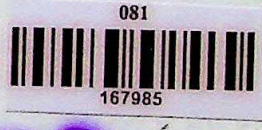

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - 05

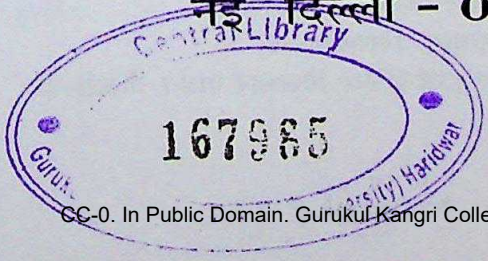

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© ईशान दत्त

वेद और वैदिक काल

मूल्य : रु. 100/–
संस्करण : 2021
प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन,
2 बी.डी. चैम्बर्स,
10/54 देशबंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग (पुलिस स्टेशन के समीप)
नई दिल्ली–110005
ई–मेल : indiabooks@rediffmail.com
hindisahityasadan@gmail.com
वैबसाइट : www.hindisahityasadan.com
दूरभाष : 9213527666, 7065618655
मुद्रक : गोयल एन्टरप्राइजिज, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–95

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय निवेदन

वेदों की अपौरुषेयता यद्यपि संसार प्रसिद्ध है, तदपि वेदों के रचना-काल तथा वेदकालीन संस्कृति एवं उनके प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों का प्रसार किया गया है।

भारतीय आर्ष मनीषियों की एतद्विषयक मान्यताओं से तो संसार सर्वथा अनभिज्ञ है, किन्तु सायण, महीधर प्रभृत्ति वेदों के मध्यकालीन भाष्यकार भी कुछ इस प्रकार के विचार व्यक्त कर गये हैं जोकि प्रमाण-पुष्ट प्रतीत नहीं होते।

आधुनिक-काल में तो न केवल वेद-व्याख्या को अपितु वेदों की ऋचाओं एवं मन्त्रों को भी विकृत करने का कुप्रयास तथाकथित पाश्चात्य विद्वानों ने किया है। वेदों के काल-निर्धारण में तो उन्होंने अपनी बुद्धि-विहीनता की पराकाष्ठा ही सिद्ध कर दी है।

किन्तु भारत का विद्वद्वर्ग ? वह भी पाश्चात्य विद्वानों (?) का दासानुदास एवं अनुकर्ता ही सिद्ध हुआ है। भारत का विद्वद्वर्ग पाश्चात्यों के उस कुचक्र को आज तक भी समझ नहीं पाया जो भारत के प्रवर्द्धमान सांस्कृतिक गौरव को सहन न कर सकने के कारण उसको विकृत करने के लिए चलाया गया था और आज भी वह उसी प्रकार प्रचलित है। तभी आज भी भारत में ऐसे विद्वानों (?) की कमी नहीं जो मैक्समूलर को न केवल वेदों का महान् भाष्यकार अपितु उसे वेदों का उद्धारकर्ता एवं ज्ञाता सिद्ध करने में अपनी विद्वत्ता की इतिश्री मानने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करते।

इस सबसे त्रस्त होकर और अवसर की आवश्यकता को अनुभव करते हुए; मनीषि विद्वान् श्री गुरुदत्त ने वेदों के रचनाकाल एवं वैदिक कालीन संस्कृति विषयक भ्रान्तियों का निवारण करने का सप्रमाण सुप्रयास इस पुस्तक में किया है।

हमें विश्वास है कि सुविज्ञ पाठक इस पुस्तक का उसी दृष्टि से अध्ययन करके न केवल स्वयं अपितु अन्य अनेक जनों को भी लाभान्वित करेंगे, तभी लेखक का अथक प्रयास सार्थक सिद्ध होगा और यही उनके प्रति पाठकों की कृतज्ञता-ज्ञापन भी होगी।

—अशोक कौशिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१. भूमिका ७

२. प्रथम खण्ड १३

वेद, परमात्मा, प्राणी-सृष्टि, मानव-सृष्टि-काल, वेद-उत्पत्तिकाल, वेद का विषय।

३. द्वितीय खण्ड ४६

शिक्षा, कल्प—१, कल्प—२, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त और छन्द।

४. तृतीय खण्ड ६८

पूर्व-मीमांसा, ब्रह्मसूत्र, सांख्य-दर्शन, वैशेषिक-दर्शन, न्याय-दर्शन, योग-दर्शन।

५. चतुर्थ खण्ड ७४

वैदिक काल, भारतीय इतिहास पुराणों में, पुराणों में अवतारों का अर्थ, वेद और वैदिक काल का आरम्भ, ब्रह्मा अर्थात् प्रजापति, आदि वैदिक काल, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र इत्यादि।

६. पंचम खण्ड १०७

जल-प्लावन, वैदिक काल, वैदिक काल की कुछ घटनाएँ, वैदिक काल की एक अन्य कथा।

७. उपसंहार ११६

८. प्रमाणानामनुक्रमणिका १२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ-संकेत

यजु०	यजुर्वेद
ब्र० सू०	ब्रह्मसूत्र
ऋ०	ऋग्वेद
अथर्व०	अथर्ववेद
भ० गी०	भगवद्गीता
महा०	महाभारत
मनु०	मनुस्मृति
वृ० उ०	वृहदारण्यक उपनिषद्
शत०	शतपथ ब्राह्मण
श्वे०	श्वेताश्वतर उपनिषद्
भाग० पु०	भागवत महापुराण
विष्णु पु०	विष्णु पुराण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

वेद क्या हैं और इनकी रचना कब हुई तथा वैदिक काल के लोग कैसे थे, इस विषय पर अपने कुछ विचार पाठकों के सम्मुख रखने के लिए यह पुस्तक लिख रहा हूँ।

इस विषय पर लिखने का विचार इस कारण हुआ कि कुछ पाश्चात्य विचारक, जो स्वयं को वेद का विद्वान् मानते हैं और वैसा ही प्रख्यात करते हैं, वे कुछ ऐसी बातें लिख रहे हैं जो हमें सत्य दिखाई नहीं दे रहीं।

इस युग में भारत में वेद तथा वैदिक–काल के विषय में रुचि उत्पन्न करने का भगीरथ प्रयास महर्षि स्वामी दयानन्द ने किया है। परन्तु इस पर भी भारतीय साहित्य तथा इतिहास के ठेकेदार भी प्रायः यूरोपियन कहे जाने वाले वेद के विद्वानों का अनुकरण कर रहे प्रतीत होते हैं।

वैसे वे भारतीय विद्वान् जो यूरोपीयन इंडोलोजिस्टों के कठोर आलोचक हैं, वे भी वेद का जो तिथि–काल उपस्थित करते हैं, वह भी त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है।

मध्यकालीन भारतीय विद्वान्, हमारा अभिप्राय है सायण, महीधर आदि भाष्यकार भी तिथि–काल के विषय में या तो मौन हैं अथवा कुछ ऐसे विचार प्रकट कर गये हैं जो उपस्थित प्रमाणों से सिद्ध नहीं होते।

इस कारण हमने इस विषय पर अपने कुछ विचार उपस्थित करने का साहस किया है। अपने विचारों की पुष्टि के लिए युक्ति और प्रमाण भी देने का यत्न किया है। फिर भी हम दावा नहीं कर सकते कि जो कुछ हमने कहा है वह ध्रुव सत्य ही होगा। विषय इतना गम्भीर और दुरूह है कि हम अन्तिम सत्य तक पहुँच गये हैं, ऐसा नहीं कह सकते। अपने सीमित साधनों और ज्ञान से जो कुछ और जितना कुछ हम समझ सके हैं, वह लिख रहे हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि ऋक् नाम है स्तुति का। स्तुति का अभिप्राय है किसी के गुण, कर्म और स्वभाव का वर्णन। अतः ऋचाएँ, पृथ्वी से लेकर परमात्मा तक के सब पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभाव का वर्णन करती हैं। सरल भाषा में यह कहा जा सकता है कि वेद ज्ञान और विज्ञान के ग्रन्थ हैं।

ज्ञान से अभिप्राय है अनादि मूल तत्त्वों का वर्णन और उनका परस्पर सम्बन्ध और विज्ञान है इस कार्य–जगत् के विभिन्न पदार्थों का वर्णन। ये दोनों ही बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद में हैं। ऐसा महर्षि स्वामी दयानन्द मानते थे और हम भी ऐसा ही मानते हैं।

परन्तु स्वामी जी ने वेद उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा है—

वेदोत्पत्तिविषयः

वेद उत्पन्न नहीं हुए। जैसे जीवात्मा, परमात्मा तथा मूल प्रकृति उत्पन्न नहीं हुए वैसे ही स्वामी जी का 'वेदोत्पत्ति विषयः' पद कानों में खटकता है।

स्वामी जी ने स्वयं भी जिस वेद-मंत्र का उल्लेख किया है, वहाँ शब्द 'जज्ञिरे' अथवा 'आपातक्षन्' है। इनका अर्थ 'उत्पन्नोऽस्ति' नहीं अथवा 'प्रादुर्भूतोऽस्ति' नहीं। यहाँ इन शब्दों का अर्थ वेद-ज्ञान से नहीं वरन् वेद के वर्तमान कलेवर, भाषा और स्वरूप से हो सकता है। वेद-विद्या (त्रयी विद्या) की उत्पत्ति नहीं हुई। अतः इन शब्दों का निर्वचन आविर्भाव ही है। वेद को अपौरुषेय कहा है।

परन्तु यह एक सामान्य बात है। कभी-कभी बड़े-बड़े विद्वान् भी सामान्य लोगों को समझाने के लिए सामान्य भाषा के शब्द प्रयोग करने लगते हैं।

परन्तु वेद के इस पृथिवी पर आविर्भाव के काल के विषय में हमारा कहना है कि वह पृथिवी के बनने तथा मनुष्य की उत्पत्ति के पूर्व नहीं हो सकता।

अतः वेदों के आविर्भाव के काल का वर्णन करते हुए यह आवश्यक है कि इस पृथिवी के बनने के काल और उस पर मनुष्य की उत्पत्ति के काल का भी उल्लेख हो। महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीनानि।

अत्रोच्यते—एकोवृन्दः षण्णवतिः कोटयोऽष्टौलक्षाणि द्विपञ्चाशत्सहस्राणि, नवशतानि, षट्सप्ततिश्चैतावन्ति (१,९६,०८,५२,९७६) वर्षाणि व्यतीतानि। सप्तसप्ततितमोऽयं संवत्सरोवर्त्ततइति वेदितव्यम्। एतावन्त्येव वर्षाणि वर्तमान-कल्पसृष्टेश्चेति।'

अर्थात्— वेद की उत्पत्ति को कितने वर्ष हो गए?

यह कहा है—एक अरब, छयानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नौ सौ छिहत्तर (१,९६,०८,५२,९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति को हो गए हैं। और यह संवत् का ७७वाँ वर्ष हैं।

७७वें वर्ष से सन् १८७७ ई० का अभिप्राय प्रतीत होता है। उसी वर्ष स्वामी जी ने वेद-भाष्य करना आरम्भ किया था।

जहाँ सृष्टि-रचना काल की गणना की गयी है (मनुस्मृति में भी और सूर्य सिद्धान्त में भी) वहाँ कहा है कि सृष्टि-रचना को १,९७,२९,४२,९७६ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—अजमेर मुद्रित, सं० २००४ वि०, पृ० २३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री युधिष्ठिर मीमांसक इस अन्तर को एक भूल के कारण मानते हैं। भूल मन्वन्तरों के आदि और अन्त में संध्या और संध्यांशों की गणना को न लेने के कारण है।

हम समझते हैं कि सृष्टि-रचना-काल की गणना दो प्रकार से की जाती है। एक मन्वन्तरों के हिसाब से और दूसरी चतुर्युगियों के हिसाब से। एक मन्वन्तर को ७१ चतुर्युगियों के बराबर माना है। परन्तु वास्तव में एक मन्वन्तर है ७१.१४ चतुर्युगियों के बराबर। बस, यह दशमलव एक चार की गणना न करने से लाखों वर्षों की गणना का अन्तर पड़ गया है।

परन्तु हमारी आपत्ति इस गणना में भूल पर नहीं है। हमारा प्रश्न है कि क्या वेदों का आविर्भाव सृष्टि-रचना आरम्भ होते ही हुआ था?

सृष्टि-रचना तब आरम्भ हुई जब (सांख्यदर्शनानुसार और ऋग्वेद १-१६३-१ के अनुसार) परमाणुओं पर परमात्मा के तेज (अर्वन्) का प्रभाव आरम्भ हुआ। क्या उसी समय वेदों का आविर्भाव हुआ? परन्तु वेद (ऋग्वेद १०-१३०-२,३,४) से ऐसा प्रकट नहीं होता।

इन प्रमाणों से हमारा मत है कि सृष्टि-रचना आरम्भ होने के कम-से-कम एक संवत्सर उपरान्त छन्दोच्चारण आरम्भ हुआ और उसके बहुत बाद में, जब पृथिवी ठण्डी होकर, उस पर वनस्पतियाँ, पशु इत्यादि बन चुके थे, तब मनुष्य उत्पन्न हुए और उस समय उच्चारित छन्दों को ऋषियों ने सुना और मनुष्यों की भाषा में उनको बताया।

यह वेद का प्रमाण है। महाभारत और पुराणों के प्रमाण भी वेद प्रमाण के अनुसार ही हैं। वहाँ कहा है, प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में नये ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है और वेद उच्चारण करने वाले ब्रह्मा विवस्वत-सुत मन्वन्तर के आरम्भ में हुए।

अतएव इन प्रमाणों से हमारा यह मत है कि वेद का उच्चारण तो छन्दों के रूप में तब आरम्भ हुआ, जब ब्रह्माण्ड फटा (मनु० १-१३) और सूर्य, पृथिवी इत्यादि बन गये। परन्तु ऋषियों ने वर्तमान भाषा में उनका स्वरूप मनुष्यों को ज्ञान देते समय दिया।

यह तब हुआ जब पृथिवी पर मनुष्य उत्पन्न हुआ। सृष्टि बनते ही वेदों का आविर्भाव नहीं हुआ, वरन् तब हुआ जब पृथिवी पर मनुष्य उत्पन्न हुआ।

इसी प्रकार सायण इत्यादि वेद-भाष्यकार इस विषय में जो कुछ कह गये हैं, वह भी प्रमाण सिद्ध नहीं है।

पाश्चात्य विद्वान् और उनका अनुकरण करने वाले भारतीय इतिहासज्ञ तो अनुल्लेखनीय हैं। उनके कथन का न कोई प्रमाण है और न उसमें कोई युक्ति है। ये वेदों के ज्ञाता भी नहीं थे। वेदभाषा से सर्वथा अनभिज्ञ जनों द्वारा वेदों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने की अनधिकार चेष्टा की गई है।

भारत में एक संस्थान है भारतीय विद्या भवन। इस संस्थान ने एक पुस्तक 'वैदिक एज' के नाम से प्रकाशित की है। इस पुस्तक का लेखक कहता है कि वेद ईसा से एक-दो हजार वर्ष पहले कहे गये हैं। यह मैक्समूलर का कथन है और मैक्समूलर, वेदों का कितना विद्वान् था, उसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

मिस्टर क्लेटन ने अपनी पुस्तक 'The Rigveda and Vedic Religion' में मैक्समूलर के वेदों के विषय में विचार लिखे हैं। वह लिखते हैं—Prof. Max-muller did not hesitate to say, 'it must not be forgotten, that though the historical interest of the Veda can hardly be exaggerated, large number of the Vedic hymns are 'childish in the extreme,' tedious and common place. Many of them convey no clear meaning, or are full of vain repetitions. It is not the rule but the exception to find in this great collection of literature any cry of the soul, any glimpse of a spiritual instinct, any grasp of a high revelation.'[1]

इसका अर्थ है—प्रो० मैक्समुल्लर यह कहने में हिचकिचाये नहीं कि इस बात को न भूलना चाहिए कि यद्यपि वेदों का ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक है तथापि वैदिक सूक्तों की अत्यधिक संख्या अत्यन्त बचकाना, दुरूह और गँवारपन की है। उनमें कोई स्पष्ट अर्थ प्रतीत नहीं होता और वे पुनरुक्ति से भरे हैं। कहीं अपवाद के रूप में, नियम से नहीं, इस साहित्य के महान् संग्रह में कहीं-कहीं ही आत्मा की पुकार दिखाई देती है या आत्मा की भावना की झलक है।

इस 'महापण्डित' और इसके ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के चेले-चाँटों के लेखों के आधार पर 'वैदिक एज' पुस्तक लिखी गयी है।

भारतवर्ष का एक रोग है। वह यह कि राजनीतिक प्रभुता प्राप्त व्यक्ति को विद्वान् और ईश्वर-भक्त माना जाता है। एक बार हिन्दुओं के एक भक्तजन ब्रह्मचारी प्रभुदत्त ने पण्डित जवाहरलाल को भी ईश्वरभक्त लिखकर प्रमाणपत्र दे दिया था। उस कोटि के वे लोग हैं जो विद्या भवन को लाखों रुपये दान देकर इसकी महिमा को बढ़ा गये हैं।

'वैदिक एज' के लेखकों को जब चुनौती दी गयी तो ये तथाकथित विद्वान् राजनीति में रत देश के अबुद्ध नेताओं से प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए साहस नहीं कर

---

१. 'The Rigveda and Vedic Religion', By Clayton, page 156. (उद्धृत पं० धर्मदेव मार्तण्ड द्वारा, वेदों का यथार्थ स्वरूप; पृ० २६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते कि वेद के विद्वानों का सामना करें।

इन यूरोपीय एवं इनके आश्रय बने हिन्दुस्तानी विद्वानों में दोष का आंशिक कारण मध्यकालीन वेदों के भाष्यकार भी हैं। उन्होंने भी वेदों के विषय में अपनी लेखनी उठाने से पहले उस प्रारम्भिक ज्ञान को प्राप्त करने का कष्ट नहीं किया, जो आवश्यक है।

जैसे एम० ए० के विद्यार्थी के लिए बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करनी आवश्यक है, वैसे ही वेदों को समझने के लिए इसके उपांगों का ज्ञान होना आवश्यक था।

वह ज्ञान सायणादि को उपलब्ध नहीं था। इस कारण वे ठीक प्रकार से वेदार्थ नहीं कर सके। आंशिक रूप में सायण तथा महीधर के भाष्यों के आधार पर और आंशिक रूप में अपने पूर्वग्रहों से ग्रसित यूरोपीय विद्वान् ठीक वेदार्थ तक पहुँच नहीं सके।

यूरोप, विशेष रूप में इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी में ईसा-पूर्व का काल अंधकार का काल था। इस कारण वहाँ के पक्षपाती लोग ऐसा विचार ही नहीं कर सकते थे कि भूमण्डल में कभी कोई सभ्यता उनसे श्रेष्ठ, विशेष रूप में ईसा से पहले हो भी सकती है। उनके लिए ईसा से पूर्व मनुष्य पशु समान था। जब इनके समक्ष भारत का इतिहास उपस्थित किया जाता है तो उसे असत्य भाषण (माइथोलॉजी) कहकर प्रसिद्ध करते हैं।

हमने तिथिकाल का निर्धारण युग-गणना के आधार पर किया है। युग-गणना ज्योतिष-शास्त्र पर निर्भर करती है। भारतीय इस विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् थे, यह बात तो सिद्ध हो ही चुकी है।

जब किसी यूरोपियन ज्योतिषी ने भारत की ज्योतिष विद्या की परीक्षा कर प्रशंसा की तो ये महापंडित कूक लगाने लगे कि यह विद्या तो भारत में अरब देशों से आयी है। और जब किसी प्राचीन अरब के विद्वान् का कोई ऐसा वक्तव्य उपस्थित किया जाए जो भारतीय विद्या अथवा वेद की महिमा में हो तो ये पक्षपाती गण उसे और उसके कथन को झूठा (मिथ) कहने लगते हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरणों में से हम एक यहाँ दे रहे हैं।

डॉक्टर ऐलफ्रेड रसल (Dr. Alfred Russel) ने अपनी पुस्तक 'Social Environment and Moral Progress' में लिखा है—

In the earliest records which have come down to us from the past, we find ample indications that accepted standard of morality and the conduct resulting from these were in no degree inferior to those which prevail today, though in some respect they differed from ours. The wonderful collections of

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

hymns known as the Vedas is a vast system of religious teachings as pure and lofty as those of the finest portions of the Hebrew Scriptures. Its authors were fully our equals in their conception of universe and the Deity, expressed in finest poetic language. (Page 11)

We must admit that the mind which conceived and expressed in appropriate language such ideas as are every where present in those Vedic hymns, could not have been inferior to those of the best of our religious teachers and poets, to our Milton, Shakespeare, and Tennyson. (Page 14)

उद्धृत···वही···(पृष्ठ ५८-५९)

इसका भाव है—

पुराने समय के जो लेख हमें इस समय मिलते हैं उनमें भी हमें इस बात के पर्याप्त संकेत प्राप्त होते हैं कि उस समय के सदाचारादि विषय के विचार और व्यवहार हमारे से किसी रूप में भी निम्न कोटि के नहीं थे, यद्यपि कई अंशों में वे हमसे भिन्न अवश्य थे। वेद के नाम से प्रसिद्ध संग्रह एक विस्तृत विचार-पद्धति है जो पवित्रता और उड़ान की ऊँचाई में यहूदी प्राचीन साहित्य की सर्वोत्तम अंशों से कम नहीं। उन (वेदों) के लेखक अपनी विश्व सम्बन्धी और ईश्वर सम्बन्धी कल्पना में पूर्णतः हमारे (यहूदियों के) बराबर थे। उन (वेदों) की भाषा सर्वोत्तम कविता के रूप में है। (पृष्ठ ११)

हमें यह मानना पड़ता है कि वह मन जिसने उन विचारों को जो उन वैदिक ऋचाओं में उचित भाषा में प्रकट किये गये हैं, जन्म दिया है, उनसे निम्न कोटि का नहीं, जो हमारे धार्मिक गुरु और कवि हमारे मिल्टन, शैक्सपीयर, टैनिसन ने कहे हैं। (पृष्ठ १४)

परन्तु हमारे दास प्रवृत्ति के 'वैदिक-एज' के लेखकों को मैक्समुल्लर और ग्रिफिथ इत्यादि ईसाई पादरी ही प्रमाण प्रतीत हुए हैं।

पुस्तक में गणना का काल सन् १९७८ तक का, अर्थात् पुस्तक के प्रकाशन समय का है, पाठक तदनुसार अपने काल में संशोधन कर लें।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे पण्डित शुचिव्रत शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, की सहायता प्राप्त रही है। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खण्ड

: १ :

वेद

वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान। आदि ज्ञान का भण्डार चार वेद ग्रंथ हैं। इनके नाम हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनके पदों को मन्त्र कहते हैं। इनकी संख्या इस प्रकार है—

ऋग्वेद	१०४८२	(श्री युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार)
यजुर्वेद	१९७५	(महर्षि दयानन्द के अनुसार)
सामवेद	१८७३	
अथर्ववेद	५९७७	
कुल मन्त्र संख्या	२०३०७	

महर्षि दयानन्द ने लिखा है और हिन्दू समाज के सब विद्वानों का भी यही मत है कि वेद परमात्मा का ज्ञान है जो परमात्मा ने इस संसार में मनुष्य के कल्याण के लिए दिया है। इससे ही यह अनुमान लगाया जाता है कि जिन-जिन विद्याओं से मनुष्य का, इस संसार में रहते हुए वास्ता पड़ता है, उन सबका ज्ञान इन बीस हजार तीन सौ सात मन्त्रों में परमात्मा ने मनुष्य को दे दिया है। यद्यपि यह बीस हजार की संख्या बहुत अधिक है, फिर भी माना जाता है कि संसार की सब विद्याओं का मूल ही इनमें दिया जा सका है। व्याख्या मनुष्य के स्वयं करने के लिए छोड़ दी है।

वृक्ष का मूल वृक्ष की अनेकानेक शाखाओं और असंख्य पत्तों का पोषण करता है। इसी प्रकार यह माना जाता है कि वेद-ज्ञान भी असंख्य विषयों और उपविषयों के ज्ञान का स्रोत है। वह सब जो मनुष्य प्राप्त कर सकता है, मूल रूप में वेद में है। ऐसा ही वेद के भारतीय विद्वानों का मत है।

यह माना जाता है कि वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् वेदज्ञान का किसी ने भी आविष्कार नहीं किया। परमात्मा भी इसका निर्माता नहीं। यह ऐसे ही अनादि है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा परमात्मा स्वयं तथा जीवात्मा और प्रकृति अनादि हैं। वेद-ज्ञान सदा रहता है। केवल यह प्रकट होता है जब इसे ग्रहण करने योग्य मनुष्य जैसा प्राणी उत्पन्न होता है।

मनुष्य पृथिवी पर उत्पन्न हुआ। इस कारण मनुष्य के उत्पन्न होते ही यह ज्ञान उसे मिल गया।

यह भारतीय परम्परा है कि वेद अनादि हैं। इसी कारण इसे ब्रह्म कहते हैं। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति भी ब्रह्म माने जाते हैं और उनके साथ ही वेद भी ब्रह्म हैं। ये चारों अनादि पदार्थ हैं।

केवल इनका आविर्भाव इस पृथिवी पर तब हुआ जब यहाँ पर मनुष्य उत्पन्न हुआ। इनका आविर्भाव किस प्रकार हुआ, यह वेद में ही वर्णित है।

यजुर्वेद का एक मन्त्र है—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ —यजु० ३१-७

उस सर्वहुत (सबसे ग्रहण करने योग्य) यज्ञस्वरूप परमात्मा से ऋक्, साम, अथर्व और यजुर्वेद प्रकट हुए।

इसी अभिप्राय का एक मन्त्र अथर्ववेद में भी है।

यह हुआ वेद प्रमाण और वेद भूमण्डल की सबसे प्राचीन पुस्तक है। परन्तु हम तो युक्ति से यह सिद्ध करते हैं कि सृष्टि पर प्रथम मानव को परमात्मा ने वेद ज्ञान दिया। परमात्मा है और वेद उस सर्वज्ञ परमात्मा के ही ज्ञान का रूप है।

सृष्टि-रचना महान् ज्ञानवान और शक्तिशाली आत्म-तत्त्व के बिना नहीं हो सकती। इससे सिद्ध होता है कि ऐसा तत्त्व (परमात्मा) है। मनुष्य को यदि कोई सिखानेवाला न होता तो वह सर्वथा अज्ञ और कोई भी मानव-योग्य कर्म करने में अशक्त रहता। इस कारण आदि मनुष्य को ज्ञान किसी ने दिया है और वह देने-वाला परमात्मा है। उसका दिया ज्ञान वेद है।[1]

यह कब की घटना है? जब मनुष्य बना। वैदिक परम्परा है कि मनुष्य, जैसा आज है, वैसा ही आदि सृष्टि के समय बना था। इस कारण यदि यह ज्ञान उसे न दिया जाता तो मनुष्य चलना-फिरना भी न सीख सकता। आज भी मनुष्य के शिशु को यदि समाज से पृथक् कर दिया जाए तो वह पशु-समान ही रहेगा। कुछ भी नहीं सीख सकेगा। यह एक वस्तु-स्थिति है कि सृष्टि-आरम्भ में मनुष्य मनुष्य के रूप में ही पैदा हुआ था। यह नहीं कि कोई इतर जीव-जन्तु जाति-परिवर्तन से

---

१. इस विषय पर लेखक की रचना 'वेद-प्रदेशिका, भाग एक' (पृष्ठ ११ से १८ तक) विस्तृत विवेचन पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य बना हो। जाति-परिवर्तन का सिद्धांत गलत है। इस कारण आदि मनुष्य को प्रारम्भिक ज्ञान देना आवश्यक था।[1]

यह है वेद की महिमा और मनुष्य के लिए इसकी आवश्यकता। वेद सब कालों में सब विषयों का मूल ज्ञान देता है।

केवल यही नहीं, प्रत्युत यह भी कहा जा सकता है कि जो कुछ मनुष्य ने आज तक आविष्कार किया है, वह उस प्रारम्भिक ज्ञान के आधार पर ही किया है।

: २ :

परमात्मा

एक नास्तिक न तो परमात्मा को मानता है, न ही उसके दिए ज्ञान को। उस के लिए यही आवश्यक है कि वह पहले इस बात का उत्तर ढूंढ़े कि यह सृष्टि कैसे बनी?

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्। —ब्र०सू० १-२-१

अर्थात्—जो सब स्थान पर, और सब काल में प्रसिद्ध है उसके ज्ञान से परमात्मा की सिद्धि होती है। कैसे?

वही सूत्रकार कहता है—

जन्माद्यस्य यतः। —ब्र० सू० १-१-२

अर्थात्—जिसने यह सृष्टि उत्पन्न की है, जो इसका पालन कर रहा है और जो इसका (समय पर) संहार करेगा, वह (ब्रह्म अर्थात् परमात्मा) है।

संसार में कुछ भी स्वतः बनता हुआ दिखाई नहीं देता। यह इस सर्वत्र प्रसिद्ध जगत् को देखने से हमें पता चलता है। एक विख्यात वैज्ञानिक न्यूटन ने कहा है—

प्रकृति का प्रत्येक कण यदि खड़ा है तो खड़ा ही रहेगा और यदि चल रहा है तो सीधी रेखा में एक स्थिर गति से चलता ही रहेगा; जब तक कि उस पर किसी बाहरी शक्ति का प्रभाव न पड़े।

अतः पृथिवी, चन्द्र और अन्य बड़े-बड़े नक्षत्रों की गति आरम्भ करनेवाला और इसको इतने काल से अण्डाकार मार्ग (ellipitical path) पर चलानेवाला,

---

१ इन प्रमाणों को सविस्तार लेखक ने अपनी रचना 'विज्ञान और विज्ञान' (पृष्ठ ७८ से १०८) में दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई महान् सामर्थ्यवान् होना चाहिए।

यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि बिना कर्ता के कर्म नहीं होता। इसका वर्णन दर्शनाचार्य व्यास मुनि ने ब्रह्मसूत्रों में भी किया है। वह कहता है—

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॥ ब्र० सू० २-२-४

अर्थात्—प्रकृति की गति उलट नहीं सकती, जब तक कोई बाहर से उस पर प्रभाव न डाले।

अतः पृथिवी, चन्द्र, तारागण इत्यादि कभी चलने आरम्भ हुए थे। उक्त सिद्धान्तों से स्पष्ट है कि इतने बड़े-बड़े पदार्थ बिना किसी बाहरी शक्ति के हरकत में नहीं आ सकते थे। साथ ही ये जो अण्डाकार मार्ग पर चल रहे हैं, वे बिना किसी महान् शक्तिशाली के निरन्तर प्रयत्न के चल नहीं सकते थे। वह सामर्थ्यवान् परमात्मा है।

: ३ :

प्राणी सृष्टि

जिसने यह सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि रचे हैं, उसी ने इस पृथिवी पर प्राणी की सृष्टि की है। प्राणी में हम वनस्पति, स्वेदज, अण्डज और जेरज—यह चार प्रकार की सृष्टि मानते हैं।

आज हम माता-पिता से सन्तान होती देखते हैं। इसे देखकर प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रथम प्राणी के माता-पिता कौन थे?

विकासवादी भी यह नहीं बता सकते कि प्राणी का आरम्भ कैसे हुआ? इस विषय में वेद में इस प्रकार बताया है—

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गभरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥

—ऋ० १-१६४-८

अर्थात्—(माता) जन्म देनेवाली (पितरम्) पिता को (ऋत्) अनादि यज्ञरूप में (आ बभाज) चारों ओर से प्राप्त करती है (अग्रे) आदिकाल में (मनसा) चित्त शक्ति से (सं हि जग्मे) निश्चय से समान रूप में संयोग होता है।

वेदमन्त्र का अभिप्राय यह है कि आदिकाल में भी (आजकल की भाँति) माता और पिता के संयोग से ही सन्तान हुई थी। उस समय, ऐसा अनुमान है, माता का कार्य पृथिवी ने किया था और पिता का कार्य सूर्य ने। (यह अगले मन्त्र से स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है)। माता ने पिता को चारों ओर से ग्रहण किया। इसका अभिप्राय यही है कि पृथिवी के उस अंश ने जहाँ गर्भ धारण होना था, सूर्य की किरणों को चारों ओर से ग्रहण किया और गर्भधारण हो गया। तब उस गर्भ में अतिप्रशंसनीय चमत्कार कार्य सम्पन्न हुआ। वह बोलनेवाला प्राणी हुआ।

यहाँ यह नहीं बताया कि एक ही प्रकार के जन्तु उत्पन्न हुए। इससे यह अनुमान होता है कि अनेकानेक प्रकार के जन्तु उत्पन्न हुए।

वेद का अगला मन्त्र है—

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु॥

—ऋ० १-१६४-९

अर्थात्—(युक्ता) जुड़ी हुई अर्थात् सम्बद्ध हुई। (माता) जन्म देनेवाली अर्थात् पृथिवी (आसीत्) थी। (धुरि) ध्रुव के (दक्षिणाया) दक्षिण में। (अतिष्ठित्) स्थित था। (गर्भः) गर्भ अर्थात् ग्रहण करने योग्य सन्तान। (वृजनीषु) वर्जनीय अर्थात् सुरक्षित स्थान में। (अन्तः) भीतर।

(अमीमेत्) प्रक्षेप करता है अर्थात् बरसता है। (वत्सः) पुत्र अर्थात् सन्तान को, (अनुगाम) पीछे आता हुआ। (अपश्यत्) देखता है। (विश्वरूपम्) समस्त रूप को (त्रिषु) तीन से (योजनेषु) बन्धनों में।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि पृथिवी, जिसे उपर्युक्त मन्त्र में जन्म देनेवाली माना है, वह पिता अर्थात् सूर्य किरणों से गर्भ धारण करती है। यह गर्भ पृथिवी के ध्रुव के दक्षिण में किसी सुरक्षित स्थान पर धारण होता है। तब इस गर्भ से अनेक प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती है। इस सन्तान में पीछे जानेवाला (जीवात्मा) आ जाता है और तीन बन्धनों से बँध जाता है।

यहाँ बंधन से अभिप्राय शरीर है। तीन प्रकार के शरीर हैं, अण्डज, स्वेदज और जेरज। स्थावर (वनस्पतियों) की सृष्टि भिन्न प्रकार से हुई थी।

इस सम्बन्ध में अगला मन्त्र है—

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्॥

—ऋ० १-१६४-१०

अर्थात्—(तिस्रो) तीन। (मातृः) माताओं। (पितॄन्) पिताओं को। (बिभ्रत्) धारण करता हुआ। (एकः) एक। (ऊर्ध्वः) ऊपर। (तस्थौ) स्थित है। (न-इम) अब नहीं। (अवग्लापयन्ति) अब गलित अर्थात् नष्ट होता।

(मन्त्रयन्ते) मन्त्र समझनेवाले। (दिवः) सूर्य के। (अमुष्य) दूर स्थित (पृष्ठे) पीठ पर। (विश्वविदम्) समस्त का ज्ञाता होता है। (वाचम्) वाणी की (अविश्वमिन्वाम्) जो सब नहीं समझ सकते।—ऋ० १-१६४-१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि प्राणी (के शरीर) की तीन माताएँ हैं और तीन पिता हैं। इसका अभिप्राय है कि शरीर के तीन अंश पृथिवी (माता) से आते हैं और तीन अंश पिता (सूर्य) से आते हैं। माता (पृथिवी) से पृथिवी, जल और वायु। पिता (सूर्य) की ओर से आनेवाले अंश हैं—अग्नि, आकाश और प्राण। यहाँ अग्नि से अर्थ है रासायनिक शक्ति जो शरीर में रासायनिक परिवर्तनों में कारण है और प्राण है जो शरीर में गतियाँ उत्पन्न करते हैं।

आकाश जो सर्व-व्यापक पदार्थ है वह पिता की ओर से आता है।[1]

प्राणी की रचना में वेद का मत वर्णन किया है। प्राणी का शरीर तो छः अंशों का बना है। पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और प्राण। अभिप्राय यह है कि पंच महाभूत और प्राण (जो परमात्मा की शक्ति ही है)।

यह कहा है कि इन छः अंगों में से तीन अंग पृथ्वी से प्राप्त होते हैं और तीन सूर्य से।

आजकल भी वही प्रक्रिया है। केवल पृथिवी का स्थान स्त्री-वर्ग ने ले लिया है और सूर्य का स्थान पुरुष-वर्ग ने।

दोनों के अंश मिलकर ही प्राणी की उत्पत्ति होती है।

वेद में सृष्टि-रचना और पृथिवी पर प्राणी उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। कोई कह सकता है कि हम वेद को प्रमाण नहीं मानते। ऐसे लोगों से हमारा कहना इतना मात्र है कि युक्ति और प्रमाण से इससे अच्छा ढंग सृष्टि और प्राणी की रचना का बता दें तो हम वह मान लेंगे।

मूल रूप में यह कहा है—

(१) प्राणी-सृष्टि से पहले वनस्पतियाँ उत्पन्न हो चुकी थीं।

(२) आदि सृष्टि-काल में पृथिवी ने माता का भाग निभाया और सूर्य ने पिता का।

(३) ध्रुव के दक्षिण में किसी सुरक्षित स्थान पर पृथिवी ने गर्भ धारण किया। यह ध्रुव के समीप ही कहीं रहा होगा, अन्यथा ध्रुव का कथन न होता।

(४) शरीर गर्भ में स्थित हो जाने पर जीवात्मा ऐसे आये जैसे वर्षा होती है और वे पृथिवी के अनेक प्रकार के निर्माण होते हुए शरीर में स्थित हो गये जो उपवाचः उच्चारण मात्र बोलते थे।

(५) इनको ऋषियों ने (अर्थयुक्त वाणी) बाद में सिखायी।

इसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे। यहाँ इतना समझ लेना चाहिये कि

---

१. इन पदार्थों का वास्तविक रूप समझने के लिए लेखक की पुस्तक 'सृष्टि-रचना' पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी ध्रुव सदा बर्फ से ढका नहीं रहता। पृथिवी की एक गति है जिसे precessional movement कहते हैं। इस गति के विषय में 'ऐन्साईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' में इस प्रकार लिखा है—

···There is a general resemblance between the motion of the earth and that of the spinning top. It is well known that when a spinning top is slightly disturbed, its axis gyrates, or precesses round the vertical so that it traces out a cone; the earth's axis similarly describes a cone at the rate one revolution in about 26,000 years·····

Ency. Brit. 1968 Ed., Vol. 18, p. 452 d.

अर्थात्—पृथिवी की गति एक लट्टू की गति से बहुत मिलती है। यह सर्व विदित है कि वेग से घूमते लट्टू को यदि थोड़ा हिला दिया जाये तो इसका धुरा डोलने लगता है और एक प्रकार की शंकु बनाने लगता है। इसी प्रकार पृथिवी का धुरा भी एक शंकु बना रहा है जिसका एक चक्कर लगभग २६,००० वर्ष में समाप्त होता है।

इसका अभिप्राय यह है कि उत्तरी ध्रुव २६,००० वर्ष में एक बार सूर्य की ओर झुक जाता है और एक बार दूर हट जाता है। जब यह सूर्य की ओर झुकता है तो इसका हिम पिघल जाता है। और जब यह सूर्य से दूर होता है तो पूर्ण उत्तरी गोलार्द्ध पर हिम पड़ जाता है।

महाभारत में ऐसा वर्णन है कि उस काल में उत्तरी ध्रुव पर वसन्त ऋतु थी। अर्थात् २६,००० वर्ष की गति में उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर झुका हुआ था। महाभारत की घटना को पाँच हजार वर्ष से अधिक काल व्यतीत हो चुका है। अभिप्राय यह कि उस गति में यह एक ऐसा समय था जब उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर झुका था। ६,००० वर्ष से यह सूर्य से दूर हट रहा है। आगामी सात हजार वर्ष में पुनः वह स्थिति आ जायेगी जब पृथिवी के उत्तरी गोलार्द्ध में हिम युग होगा।

इससे हमारा अनुमान है कि मानव सृष्टि ध्रुव के दक्षिण में हुई है, आज से या तो ६,००० वर्ष पहले जब उत्तरी ध्रुव पर उपयुक्त ऋतु हुई होगी अथवा ६,००० + २६,००० अथवा ६,०००+२,६०००+२६,००० वर्ष पहले अथवा इसी प्रकार ६,००० वर्ष में प्रति २६,००० वर्ष के पूर्व और पूर्वकाल में मानी जा सकती है।

श्री बालगंगाधर तिलक ने आज से छः अथवा सात हजार वर्ष पूर्व उत्तरी ध्रुव की अनुकूल उष्मा को ही मानव-सृष्टि का काल मान लिया है। यह उनकी भूल थी।

अन्य प्रमाणों से यह ठीक प्रतीत नहीं होता। यह तो वर्तमान युग के वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मानते हैं कि पृथिवी पर मानव-कंकाल इक्कीस से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व के काल के मिल चुके हैं।

इसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि मानव-सृष्टि ६,००० वर्ष से बहुत पुरानी है।

अब तक हम यह बता चुके हैं कि—

(१) सृष्टि की रचना हुई है।

(२) इसको रचनेवाला कोई सामर्थ्यवान् और ज्ञानवान् तत्त्व है।

(३) इसकी रचना में प्राणी की रचना भी सम्मिलित है।

(४) वेद मनुष्य रचना के समय कहा गया था।

(५) वेद चार हैं। इनकी कुल मंत्र संख्या है २०,३०७।

: ४ :

मानव-सृष्टि काल

मानव-सृष्टि कब हुई? यह प्रश्न है।

वर्तमान विज्ञान की एक शाखा जिओलोजी, (भूगर्भ शास्त्र) इस विषय में खोज कर रही है। इस खोज में विज्ञान के विशेषज्ञ प्राणी सृष्टि को चार कालों में बाँटते हैं। ये चार काल इस प्रकार हैं—

(१) प्री-कैम्बरियन युग (Precambrian Time) ४,००,००,००,००० वर्ष से लेकर ८२,००,००,००० वर्ष आज से पूर्व तक। इस युग के विषय में यह कहा जाता है कि इसका विधिवत् ज्ञान नहीं है। इस युग में पेड़, पौधे तथा प्रायः बिना हड्डी के जन्तु उत्पन्न हुए।

(२) पेलयोजोइक युग (Paleozoic Era)—यह युग ५०,००,००,००० वर्ष से लेकर २३,००,००,००० वर्ष आज से पूर्व है। इस युग में प्रारम्भिक मछलियों से आरम्भ कर रींगनेवाले जन्तु और वे जंगल जो बाद में कोयला बने, उत्पन्न हुए।

(३) मैसोजोइक युग (Mesozoic Era)—यह युग आज से २०, ००,००, ००० पूर्व से लेकर १३,००,००,००० वर्ष पूर्व तक का है। यह डाइनोसर जन्तुओं से लेकर इनके अंत तक चलता रहा।

(४) सिनोजोयेक युग (Cenozoic Era)—यह युग आज से पूर्व ७,००,००, ००० वर्ष से लेकर ११,००० वर्ष तक का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-V
 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस युग में जेरज जन्तुओं का आविर्भाव हुआ। यह वर्तमान मनुष्य के बनने का काल माना जाता है।

११,००० वर्ष से लेकर आज तक मनुष्य में विकास होता चला आया है। यह जियोलोजी (भूगर्भ शास्त्र) के विद्वानों की कल्पना है।

इस विज्ञान की सत्यता पर हमें बहुत संदेह है।[1]

यहूदी और ईसाई धर्म मनुष्य की उत्पत्ति आदम से मानते हैं। आदम का अर्थ ही है आदि मनुष्य। इसका तिथिकाल जो अंजील (Bible) में लिखा है, वह इस प्रकार है—

आदम से नौआ तक—११ पीढ़ियाँ	काल २२६३ वर्ष
नौआ से इब्राहीम तक—११ पीढ़ियाँ	१३०० वर्ष
इब्राहीम से ईसा तक—	१९०० वर्ष
ईसा से आज तक	१९७८ वर्ष
(अर्थात् इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के प्रकाशित होने तक)	
	७४४१
(सन् १९७८ तक)	

Central Library
167985
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

कुल बने ७,४४१ वर्ष। यह तो प्रत्यक्ष रूप में ही गलत मालूम होता है। उसका कारण यह है कि इससे बहुत पहले के मनुष्य-कंकाल मिलते हैं। इस विषय में हिन्दू ज्योतिष शास्त्र का कथन हम आगे चलकर वर्णन करेंगे।

'भूगर्भ' शास्त्र के अनुसार काल की गणना हम लिख चुके हैं। यह प्राणियों की सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन ही है। कुछ वैज्ञानिकों ने सूर्य ताप अथवा रेडियो ऐक्टिविटी से कुछ आँकड़े एकत्रित किये हैं। उससे मनुष्य अथवा प्राणी के पैदा होने का नहीं, वरन् सृष्टि-रचना का कुछ-कुछ पता चलता है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र सृष्टि-उत्पत्ति का काल और मनुष्य-जन्म का काल नक्षत्रों को देखकर बताता है। यह इस प्रकार कहा जाता है—

सृष्टि-रचना आज (१९७८) से १,९७,२९,४०,०७८ वर्ष पूर्व आरम्भ हुई।

परन्तु यह मनुष्य के आविर्भाव का काल नहीं है। हम मनुष्य का इस पृथिवी पर आविर्भाव वर्तमान चतुर्युगी से मानते हैं।

इसकी गणना इस प्रकार की गई है। ४,३२,००,००,००० सौर वर्ष का ब्रह्मदिन माना है। पूर्ण ब्रह्मदिन को १४ मन्वन्तरों में बाँटा है। इन मन्वन्तरों में से अभी तक छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं और सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

---

१. इस विषय का विवेचन लेखक की रचना 'विज्ञान और विज्ञान' में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवें मन्वन्तर की २७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं। २८वीं चतुर्युगी का सत-युग, त्रेतायुग और द्वापुरयुग बीत चुका है और कलियुग के ५०७८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यह सब बनता है १,९७,२९, ४०,० ७८ सौर वर्ष।

यह सृष्टि-रचना के आरम्भ से आज १९७८ तक का व्यतीत काल है।

परन्तु इस पृथिवी पर मनुष्य कब बना, यह प्रश्न इससे सुलझा नहीं है। सृष्टि-रचना का कार्य तब आरम्भ होता है, जब परमाणु की साम्यावस्था भंग होती है।

यह साम्यावस्था क्या है और किस प्रकार भंग होती है? यह इस पुस्तक का विषय न होने से, हम यहाँ नहीं लिख रहे।[1]

वर्तमान पुस्तक में हमारा प्रयोजन मानव-सृष्टि का वर्णन करने से ही है। यह रचना कहाँ हुई, यह हमने अपने इस पुस्तक के तृतीय अध्याय में बताया है। यहाँ हम बता रहे हैं कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र इस विषय में क्या बताता है।

ब्रह्मदिन (सृष्टि-रचना काल) ४,३२,००,००,००० वर्ष का होता है।

अथर्ववेद में इनका वर्णन इस प्रकार आता है—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वेयुगे त्रीणि चत्वारि कृष्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः॥

—अथर्व० ८-२-२१

इस मंत्र का देवता अर्थात् विषय प्रजापति है। प्रजापति का अर्थ है सृष्टि का रचनेवाला।

मन्त्रार्थ इस प्रकार है—

(ते) तेरे लिए। (युगे कृष्म) युगों को (रचना-काल को) करते हैं। (यहाँ 'हम' परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है।)

(शतं अयुतं) सौ के दो शून्य और अयुत से पाँच शून्य (से पहले क्रमवार) (द्वे त्रीणि चत्वारि) दो तीन और चार के अंक (के लगने से) (इन्द्राग्नि ते विश्वे देवा) इन्द्र और अग्नि (जो महान् देवता हैं उनकी सहायता से) (देवाः नु) ये देवता (अहृणीयमानाः मन्यन्ताम्) पूर्ण शक्ति से अनुकूल रहें।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि प्रजापति (परमात्मा) ने हमारे लिए सृष्टि-रचना की है और उसकी अवधि निश्चय की है ४,३२,००,००,००० सौर वर्ष। इसमें दिव्य गुणयुक्त पदार्थ बनाये हैं और वे हमारे अनुकूल हैं। अर्थात् उन द्वारा हमारा पालन-पोषण होता है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र भी इसी प्रकार गणना करता है, जैसा इस मन्त्र में कहा है।

---

१. इस विषय का वर्णन लेखक की पुस्तक 'सृष्टि-रचना' में पृष्ठ ३१-३९ तथा ५९ से ६१ तक पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद के कुछ भाष्यकार इस मंत्र का अर्थ ऐसे भी करते हैं—

(ते शतं अयुतं) तेरे लिए सौ, दस हजार। (हायनान्) वर्षों की। (द्वे त्रीणि चत्वारि) दो, तीन और चार—युगों का बनाया है।

इन अर्थों से ब्रह्मदिन की गणना इस प्रकार बन जाएगी—

शतं अयुते = १,००,००,०००

ऐसे दो = २,००,००,०००; तीन = ३,००,००,०००

चार = ४,००,००,०००।

इस प्रकार पूर्ण ब्रह्मदिन = ९,००,००,००० (नौ करोड़ वर्ष)। ये भाष्यकार इसको देव वर्ष मानते हैं।

तब सौर वर्ष हो जायेगा = ३६० × ९,००,००,००० = ३२,४०,००,००,००० (३२·४ अरब वर्ष से ऊपर)। परन्तु ऊपरवाले अर्थ, जिसे ज्योतिष शास्त्र भी स्वीकार करता है, ठीक प्रतीत होते हैं। इस प्रकार एक ब्रह्मदिन (सृष्टि-रचना-काल) होगा = ४,३२,००,००,००० सौर वर्ष।

ब्रह्मदिन को वेद में स्कम्भ कहा है। स्कम्भ का अर्थ है—खम्भा। यह काल-रचना को आश्रय प्रदान करता है। इस कारण इसे स्कम्भ कहते हैं। इस विषय में मंत्र इस प्रकार है—

यस्मिन्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

—अथर्व० १०-७-७

अर्थात्—(यस्मिन्) जिसमें (प्रजापतिः) परमात्मा ने। (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (आकाश-गंगा अर्थात् galaxy) (स्तब्ध्वा अधारयत्) रोककर धारण किया हुआ है। (तम् स्कम्भं ब्रूहि) उसको स्कम्भ कहो। (कतमः स्विदेव सः) कौन-सा वह है?

इस मन्त्र का अभिप्राय है कि स्कम्भ वह है जिसमें प्रजापति (परमात्मा) द्वारा बनायी सृष्टि धारण की हुई रहती है। अर्थात् वह काल जिसमें सृष्टि बनी रहती है। इसी को ब्रह्म दिन कहते हैं।

अभिप्राय यह है कि ब्रह्मदिन को स्कम्भ कहा है। इसी स्कम्भ के विषय में आगे कहा है—

यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यत्र प्राविशत् कियत् तद् बभूव॥

—अथर्व० १०-७-८

अर्थात्—(प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्) प्रजापति (परमात्मा) ने सब रूपों में सृष्टि का सृजन (निर्माण) किया। वह सृष्टि (यत् परमम् अवमम्) जो अति ऊँची और नीची है। (यच्च मध्यम) और जो बीच में है (अभिप्राय यह कि पूर्ण जगत्)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कियता स्कम्भ) कब से यह काल है जो प्रवेश किया था अर्थात् आरम्भ हुआ था। और (तत्र यत् न प्राविशत्) और वह कब नहीं रचा गया था। (कियत् तद् बभूव) कब यह नहीं होगा।

इस मन्त्र में उस रचित जगत् की अवधि पूछी गई है। पहले पूछा है कि जो परमात्मा ने ऊपर, नीचे और मध्य में सब प्रकार का निर्माण किया है, वह कब से है, कब तक रहेगा और कब नहीं था ?

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एकं यदं गगमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥

—अथर्व० १०-७-९

अर्थात्—(कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतम्) भूतकाल में यह कब तक बना हुआ था ? (कियद् भविष्यद् अन्वाशये अस्य) कब तक निरन्तर इसका भविष्य है ?

(एकं यदङ्गम् अकृणोत्) इसको एक अंग करके (सहस्रधा कियता) एक सहस्र प्रकार से (स्कम्भः प्रविवेश तत्र) ब्रह्मदिन वहाँ रचा रहेगा।

जहाँ अथर्ववेद (८-२-२१) में पूर्ण ब्रह्मदिन की अवधि बतायी थी कि यह ४,३२,००,००,००० वर्ष है, वहाँ इन मन्त्रों (१०-७,७,८,९)में ब्रह्मदिन में विविध प्रकार की रचना उस रचना के बने रहने के काल को एक सहस्र भागों में बाँटा है। एक भाग को देवयुग कहा है। देववर्ष पूर्ण राशि को एक सहस्र से भाग देने से बनेगा।

इस प्रकार एक चतुर्युगी=४३,२०,००० वर्ष।

इसमें चार युग (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग) की अवधि भी ज्योतिष शास्त्रों में बतायी है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह पता कैसे चली ? ज्योतिषाचार्य कहते हैं कि नक्षत्रों की गतियों से यह पता चलता है कि प्रत्येक ४३,२०,००० वर्ष के उपरान्त काल में परिवर्तन होता है।

ब्रह्मदिन का विभाजन मन्वन्तरों में भी किया गया है। सृष्टि के आरम्भ होने से लेकर इसके पुनः लय होने तक के काल को १४ भागों में बाँटा गया है। प्रत्येक भाग को मन्वन्तर कहते हैं। जब से रचना-कार्य आरम्भ हुआ है तब से छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं।

सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

प्रत्येक मन्वन्तर में रचना का विशेष कार्य हुआ है और उस कार्य को प्रकट करने के लिए ही मन्वन्तरों के नाम रखे गए हैं।

मनुस्मृति में इन मन्वन्तरों के नाम इस प्रकार दिए हैं—

(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) विवस्वतसुत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान में सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

एक विद्वान् पण्डित रघुनन्दन शर्मा ने इन मन्वन्तरों में हुए कार्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

(१) स्वायम्भुव मन्वन्तर में नक्षत्रादि जगत् तैयार हुआ। (२) स्वारोचिष में पृथिवी तैयार हुई। (३) पृथिवी से चन्द्रमा पृथक् हुआ। (४) समुद्र से भूमि बाहर निकली। (५) वनस्पति उत्पन्न हुई। (६) पशु उत्पन्न हुए।(७) मनुष्यों की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार पण्डित रघुनन्दन शर्मा के विचार से मनुष्य को उत्पन्न हुए लगभग बारह करोड़, पाँच लाख, तैंतीस हजार, अठहत्तर वर्ष हुए हैं। यह गणना इस प्रकार की गई है—

व्यतीत सत्ताईस चतुर्युगियाँ	११,६६,४०,०००
अट्ठाईसवीं चतुर्युगी का सतयुग	१७,२८,०००
,, ,, का त्रेतायुग	१२,९६,०००
,, ,, का द्वापरयुग	८,६४,०००
व्यतीत कलियुग (सन् १९७८ तक)	५,०७८
कुल व्यतीत काल (सन् १९७८ तक)	१२,०५,३३,०७८

यह सातवें मन्वन्तर का व्यतीत काल है और श्री रघुनन्दन शर्मा का विचार है कि मनुष्य लगभग इतने वर्ष से इस पृथिवी पर है।

वैदिक मत विकासवाद (Evolution Theory) को नहीं मानता। वैदिक मत के अनुसार सब जन्तु जब-जब भी उत्पन्न हुए, वैसे ही उत्पन्न हुए, जैसे अब हैं अथवा कभी भी रहे हैं।

हमारा मत श्री रघुनन्दन जी से कुछ भिन्न है। हम यह मानते हैं कि—

(१) स्वायम्भुव मन्वन्तर में परमात्मा का तेज उत्पन्न हुआ और कार्य करता रहा। इस विषय में एक वेदमन्त्र इस प्रकार है—

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥

—ऋ० १०-१२९-३

(अग्रे तमसा गूळम् तमः आसीत्) सबसे पहले अन्धकार से आच्छादित प्रकृति साम्यावस्था में थी। यहाँ तमः के अर्थ साम्यावस्था में प्रकृति ही है। वह प्रकृति (सर्वम् इदम् सलिलं) यह सब सलिलावस्था(fluid), अर्थात् जल की भाँति अथवा कणदार रेत की भाँति बह जानेवाली अवस्था में थी (तुच्छ्येन अपिहितम् यत् आसीत्) जो(प्रकृति)कारण रूप से उपस्थित थी—अभिप्राय है परमाणु रूप में—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तत् तपसः महिना एकम अजायत्) उसके तप के प्रभाव से एक (तेज) उत्पन्न हुआ।

इस मन्त्र में सृष्टि-रचना से पहले की अवस्था वर्णन की गई है। कहा है कि एक शक्ति उत्पन्न हुई।

इसी भाव को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक अन्य मन्त्र है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।

—ऋ० १६३-१

(प्रथमम् जायमान) पहले उत्पन्न होता हुआ (उत् वा यत् समुद्रात्) जो ऊपर उठता हुआ अन्तरिक्ष में (यदक्रन्दः) बहुत शब्द करता हुआ।

ऊपर जो ऋ० १०-१२९-३ में कहा था, यही हुआ। यहाँ यह लिखा है कि फैल गया अन्तरिक्ष में।

इसी काल की बात मंत्र में लिखी है—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं दसवो निरतष्ट॥

—ऋ० १-१६३-२

(यमेन दत्तं) पहले यह नियन्त्रणकर्त्ता परमात्मा से दिया गया था। (वह शब्द करता हुआ तेज जो पहले उत्पन्न हुआ था, वह परमात्मा से दिया गया था।)

(आयुनक् एनम् त्रित अध्यतिष्ठत्) लगाम की भाँति त्रित से ग्रहण किया गया अर्थात् वह तेज त्रित अर्थात् परमाणु से ग्रहण किया गया। (गन्धर्वो अस्य सूरात् रशनाम्) सूर्य की किरणों की भाँति उसने परमाणुओं को सिधाया।

इसी काल की बात को अगले मंत्र में भी कहा है—

असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि।

—ऋ० १-१६३-३

(असि सोमेन समया) जो साम्यावस्था में परमाणु थे, (विपृक्ता) उनका रूप बदल दिया। अभिप्राय यह है कि साम्यावस्था भंग हुई और बदलकर असाम्यावस्था उत्पन्न हुई। उस बदली अवस्था में (आहुः ते त्रीणि दिवि बन्धनानि) तीन प्रकार के बन्धन (electron, proton, neutron) परमाणुओं के बने जो दिव्य गुणयुक्त थे, ऐसा कहा है।

इसका अभिप्राय है कि परमाणुओं के संयोग बने जो तीन प्रकार के थे। वे संयोग दिव्य गुणयुक्त थे। ये थे अहंकार (atomic particles)। यह स्वायुम्भव मन्वन्तर में हुआ।

इसी मन्वन्तर में एक अण्डा बना जिसे अंग्रेजी में नैब्युला (nebula) कहते हैं। इसे संस्कृत में हिरण्यगर्भ कहा है।

यह सब प्रथम मन्वन्तर में हुआ। तदनन्तर द्वितीय (स्वारोचिष) मन्वन्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यह हिरण्यगर्भ (nebula) फटा और पृथिवी अर्थात् ठोस पदार्थ (मनु० १-१३) ग्रह और दिवे (सूर्य) तथा अन्तरिक्ष निर्माण हुए।

इस फटने में घोर शब्द हुआ। इसी कारण इस मन्वन्तर को स्वारोचिष कहा है। यह अति भयंकर विस्फोट हुआ होगा।

इसके उपरान्त हिरण्यगर्भ के भिन्न-भिन्न भाग उड़कर, कोई दूर, कोई समीप गये और दिव्य शक्ति के एक बड़े चक्के की भाँति घूमने लगे। यह आकाश-गंगा (Galaxy) बनी।

इसका स्वरूप गोल चक्के-सा बन गया। यह सब द्वितीय मन्वन्तर में हुआ।

तीसरे उत्तम (मन्वन्तर) में इस आकाश-गंगा की स्थिति स्थिर हुई और यह भली प्रकार से चलने लगी।

चौथे तामस मन्वन्तर में हिरण्यगर्भ की गर्मी से, जो प्रकाशयुक्त था, वह अब ठण्डा होने से अंधकारयुक्त हो गया।

पाँचवें मन्वन्तर में रैवत सूर्य जितने भी आकाश-गंगा में थे, चमकने लगे और अपने प्रकाश से अपने ग्रहों को प्रदीप्त करने लगे। इसी मन्वन्तर में सोम उत्पन्न हुआ जिससे इस मन्वन्तर का नाम रैवत पड़ा है। सोम जीवन (life) तत्त्व का जन्मदाता (living matter) था।

इस तत्त्व का प्रभाव पृथिवी पर छठे मन्वन्तर में हुआ, जिसे चाक्षुप मन्वन्तर कहा है।

सोम और सूर्य के योग से वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। वनस्पतियों के उपरान्त जीव-जन्तु बने। जीव-जन्तु सूर्य और पृथिवी के संयोग से बने। ये सब सातवें मन्वन्तर में बने।

हमारा अनुमान है कि मानव-रचना वर्तमान चतुर्युगी के प्रारम्भिक काल में हुई।

यहाँ इतना समझ लेना चाहिए कि सृष्टि-रचना का क्रम तो वेदादि ग्रंथों में वर्णित है, परन्तु कुछ बातें स्पष्ट नहीं हैं; जैसे—

(१) सब मन्वन्तर एक समान अवधि के हैं अथवा छोटे-बड़े हैं?

(२) सृष्टि-रचना का क्रम विदित होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि किस-किस क्रम को कितना-कितना काल लगा?

(३) वेद में तो सामान्य (general) प्रक्रिया का ही वर्णन है। परन्तु निश्चयात्मक तिथिकाल उसमें वर्णित नहीं है।

यदि हम मानें कि मानव-सृष्टि वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में हुई तो यह रचना-आरम्भ से १,८५,२४,०७,००० वर्ष व्यतीत होने पर जब वर्तमान मन्वन्तर आया, तब हुई। पहले वनस्पतियाँ बनीं फिर बड़े-बड़े वन बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर ११,६६,४० ००० वर्ष व्यतीत होने पर मानव-सृष्टि हुई और मानव-सृष्टि को हुए (१९७८) तक लगभग ३०,९३,०७७ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

: ५ :

वेद उत्पत्ति काल

सृष्टि उत्पत्ति का जो वर्णन ऊपर लिखा है, उससे यह स्पष्ट है कि जब सृष्टि का रचना-कार्य आरम्भ हुआ, उस समय से ही वेद वर्तमान रूप में हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह सम्भव भी नहीं है।

इससे एक दूसरा प्रश्न भी सम्बन्धित है। वह यह कि परमात्मा ने यह वेद-ज्ञान हमारे पितरों को कैसे दिया ?

इन दोनों प्रश्नों का समाधान वेद ने स्वयं किया है। ऐसा कहा है कि वेद-ज्ञान अपौरुषेय है। अर्थात् ज्ञान रूप में यह सदा से है। मनुष्य में जीवात्मा भी पुरुष कहाता है और परमात्मा भी पुरुष है। इस कारण जब किसी वस्तु को अपौरुषेय कहा जाये तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि वह न परमात्मा का कहा होगा, न किसी मनुष्य का। तब यह प्रकट कैसे हुआ ? इस विषय में वेद इस प्रकार कहता है—

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत्।
छन्दः क्रिमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे॥

—ऋ० १०-१३०-३

(यत् विश्वे देवाः देवम् अयजन्त्) जब सम्पूर्ण देवता परमात्मा का यजन (परमात्मा द्वारा चलाये लोक-कल्याण के कार्य को) करते हैं (तब) (का आसीत् प्रमा प्रतिमा) जो स्वरूप बना था, उसका प्रमाण (नाप = measure) क्या था ? (किम् निदानम् आज्यं) (इस निर्धारण) का कारण और निर्माण में (पदार्थ) क्या था ? (किम् आसीत् परिधिः) (उस निर्माण का घेरा) कितना बड़ा था ? (छन्दः किम् आसीत् प्रउगं) छन्द क्या थे जो गाये जा रहे थे (किम् उक्थं) वे छन्द क्या कहते थे ?

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि सृष्टि-रचना में जब देवता (अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति इत्यादि) बन गये, तब वे किस प्रकार परमात्मा के रचना यज्ञ को आगे चला रहे थे ? कितना बड़ा जगत्, कितनी बड़ी परिधि का उन्होंने बनाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था? अभिप्रायः यह कि यह बहुत बड़ा था। और इसके बनाने में सामग्री वस्तु क्या प्रयोग की थी?

सामग्री के विषय में तो सांख्यदर्शन बताता है। कहा है कि प्रकृति के परमाणु साम्यावस्था में थे। वेदों में भी (ऋ० १-१६३-३) 'सोमेन समया' साम्यावस्था प्रकृति को ही रचना में 'आज्यं' कहा है।

मंत्र में कहा है कि जगत् प्रकृति से बना था और बहुत लम्बा-चौड़ा था। उस समय देवता परमात्मा के कार्य को आगे चला रहे थे।

जगत् जिसमें हमारा सौर-मण्डल एक बहुत ही छोटा-सा भाग है, उसकी परिधि और मान अब जानने का यत्न किया गया है।

यह कहा है कि यदि जगत् (galaxy) के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने के लिए हम प्रकाश की गति (१,८६,३०० मील प्रति सैकेण्ड) से भागें तो ६०,००,००,००० (साठ करोड़ वर्ष) लग जायेंगे।

इस जगत् (आकाश-गंगा) में नक्षत्रों और ग्रहों की संख्या लगभग १०,००,००,००,००० है।

यह आकाश-गंगा हमारा जगत् है। इसमें सौर-मण्डल कितना छोटा-सा है, इसका अनुमान इससे लग जायेगा कि आकाश-गंगा एक चपटी तश्तरी की भाँति के फैलाव में है और यह अपने केन्द्र पर घूम रही है। हमारा सौर-मण्डल भी इस पूर्ण प्रपंच में घूम रहा है। यह अनुमान है कि सौर-मण्डल को इस महाचक्र में घूमते हुए चक्र पूर्ण करने में २०,००,००,००० (बीस करोड़) वर्ष लग जायेंगे।

वेद इस पूर्ण जगत् का ही वर्णन करता है। यहाँ यह भी विदित होना चाहिये कि इस जगत् से बाहर और जगत् भी हैं। परन्तु वेद जो हमें मिले हैं, वे इस जगत् का वर्णन कर रहे हैं। कहा है कि इस जगत् के देवता (दिव्य पदार्थ) जब बन गए तो छन्द उच्चारण करने लगे। वे छन्द क्या थे? किस-किस ने उच्चारण किए, यह अगले मंत्रों में कहा है। मन्त्र इस प्रकार हैं—

अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत्॥
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः।
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाकॢप्र ऋषयो मनुष्याः॥

—ऋ० १०-१३०-४,५

अर्थात्—उस समय (जिसका कथन पूर्व मन्त्र (१०-१३०-३) में है (अग्ने सयुग्वा गायत्री) अग्नि के साथ गायत्री छन्द का सम्बन्ध (अभवत्) उत्पन्न हुआ।

(उष्णिहया सविता सं बभूव) उष्णिता से सविता का (सम्बद्ध) हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उक्थैः अनुष्टुभा महस्वान् सोमः) ओजस्वी सोम से सम्बद्ध अनुष्टुभ छन्द होते हैं। (बृहस्पतेः बृहती वाचम् अवत्) बृहस्पति से बृहती छन्द आता है।

(विराट् मित्रावरुणयोः) विराट् छन्द मित्र और वरुण से। (अभिश्रीः) आश्रित होते हैं। (अह्नः भागः) दिन के समय। (त्रिष्टुप् इन्द्रस्य) इन्द्र का (सम्बन्ध है) त्रिष्टुप् के साथ। (विश्वान् देवान् जगती आविवेश) सम्पूर्ण देवताओं का जगाती छन्द व्याप्त हुआ। (तेन चाक्लृप ऋषयः मनुष्याः) उन (छन्दों) से ज्ञानवान हुए ऋषि और मनुष्य।

कैसे ज्ञानवान् हुए? यह भी बताया है—

चाक्लृपे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे॥

—ऋ० १०-१३०-६

अर्थात्—(तेन चाक्लृपे) उन (छन्दों) से ज्ञानवान होकर। (मनसा चक्षसा) मानसिक आँखों से (ऋषयः मनुष्याः) ऋषि, मनुष्य। (पितरः न पुराणे) हमारे पुरा काल में उत्पन्न पितर। (यज्ञे जाते) जो रचना के समय उत्पन्न हुए थे। (पूर्वे पश्यन् अन्ये) पूर्व काल में दूसरे देखते हुए (मनसः चक्षसः) मन के चक्षुओं से। (तान्) उनको (इमं यज्ञमयजन्त) इस हो रहे यज्ञ में।

इन चार मन्त्रों में किस प्रकार वेद मनुष्यों तक पहुँचे, इसका वर्णन है। रचना-क्रम में जब देवता बन गये तब अग्नि से गायत्री छन्द, उष्णिग् छन्द सविता से, अनुष्टुभ छंद सोम से और बृहती छन्द बृहस्पति से आश्रय पाकर प्रसारित हुए। वरुण और मित्र से विराट्, त्रिष्टुप् इन्द्र से दिन के समय और सब देवताओं से जगाती छन्द आश्रय पा गये। अर्थात्—

(१) गायत्री छन्द अग्नि के सहाय से,
(२) उष्णिग् छन्द सविता के सहाय से,
(३) अनुष्टुभ छन्द सोम के सहाय से,
(४) बृहती छन्द बृहस्पति के सहाय से,
(५) विराट् छन्द अग्नि और मित्र से,
(६) त्रिष्टुप् इन्द्र से,
(७) जगती छंद सब देवताओं से।

इस प्रकार वेद के सात छन्द हैं। शेष इनके उपछन्द हैं। ये इन देवताओं के सहाय से प्रकट हुए।

ये छन्द ऋषियों ने अपने मन के चक्षुओं से अनुभव किए और उनको समझ-कर स्वयं ज्ञानवान हुए तथा रचना-यज्ञ में उत्पन्न हुए मनुष्य, पितर और पूर्व के अन्य लोग ज्ञानवान हुए।

इन मन्त्रों में इन सब ज्ञानवान होनेवालों के लिए 'यज्ञे जाते' कहा है। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है कि जो सृष्टि-रचना के साथ उत्पन्न हुए। इसका अभिप्राय है अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुए।

इन मन्त्रों में एक अन्य शब्द आता है—'सयुग्वा'। इसका अर्थ है सहयोग से। अभिप्राय यह है कि इन छन्दों को उच्चारण करनेवाले तो ये देवता थे परन्तु ये केवल सहयोग ही दे रहे थे। किसको ? परमात्मा को। किस प्रकार सहयोग दे रहे थे ? जैसे हमारा मुख और गले में स्वर-यन्त्र आत्मा के कहे शब्द उच्चारण करते हैं। मुख और गला तो प्रकृति के अंश हैं, ये जीवात्मा के आदेश पर बोलने लगते हैं। वैसे ही परमात्मा के आदेश पर देवता बोलने लगते हैं।

परन्तु ऋषियों और अमैथुनी पुरुषों ने जब इनको सामान्य जनों को दिया तो एक भाषा में दिया। उस भाषा का नाम राष्ट्री है और वेद में उसके प्रकट होने का भी वृत्तान्त है।

यह कहा है—

यद्वाग् वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टतैतु॥

—ऋ० ८-१०९-१०,११

अर्थात्—(यत् वाक् अविचेतनानि वदन्ति) जब वाणी जो विशेष अर्थवाली नहीं (सामान्य अर्थों को कहती है) (देवानां निषसाद्) देवताओं (दिव्य पदार्थों) में स्थापित हो जाती है। (तब) (चतस्र ऊर्ज) चारों दिशाओं में शक्ति रूप में। (दुदुहे पयांसि) विविध ज्ञान दुहती। (क्वसित् अस्याः परमं जगाम मन्द्रा) यह परम आनंद को देनेवाली है।

(देवाः देवीं वाचं अजनयन्त) देवता उस दिव्य वाणी को प्रकट करते हैं। (विश्वरूपाः पशवो वदन्ति) सभी प्राणी उसे बोलते हैं। (सा नः मन्द्रा इषं ऊर्जं दुहाना धेनुः) वह हमें हर्षोत्पादक अन्न और ऊर्जा ऐसे देती है जैसे गाय दूध देती है। (ताः अस्मान् उप एतु सुष्टता) वह वाणी हमको सेवा के लिए प्राप्त हो।

इस प्रकार वेद में वाणी का और वेद के छन्दों का पृथिवी पर आने का वर्णन मिलता है। यह इस प्रकार कि पहले राष्ट्री भाषा परमात्मा की कृपा से और देवताओं की सहायता से उच्चारित हुई और वह शक्ति की भाँति चारों दिशाओं में फैल गयी। हमने उसका ऐसे पान किया जैसे गाय के स्तनों से निकल रहा दूध पान करते हैं। यह वाणी सामान्य थी। यह वेद की भाँति ज्ञानवाली नहीं थी। सामान्य पदार्थों के विषय में बतानेवाली थी। जब मनुष्य इस वाणी को सीख गया तब देवताओं द्वारा उच्चारित हो रहे छन्द रश्मियों (तरंगों) की भाँति प्रसारित होने लगे। उन तरंगों को ऋषियों ने समझा और स्वयं उनका अर्थ समझकर वे ज्ञानवान् हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जब प्रथम अमैथुनी मानव-सृष्टि हुई तो उसको ज्ञानवान् किया। तदनन्तर मनुष्य जो उनसे पीछे पैदा हुए, ज्ञानवान् हुए।

वेदों के जन्म की और वेद-ज्ञान के मनुष्य को मिलने की यह प्रक्रिया है।

साथ ही वेद (ऋ० १०-१३०-३) में कहा गया है कि जब रचना-क्रम में देवता बन गये तो छन्द उच्चारण होने लगे। परन्तु मनुष्य तो उसके बाद उत्पन्न हुआ।

पृथिवी बनी तो देवताओं के साथ ही थी। पृथिवी भी एक देवता है। परन्तु बनने के समय पृथिवी अति उष्ण थी। यह भी वर्णन मिलता है कि आरम्भ में यह तरल (अर्ध ठोस) थी। बाद में यह ठण्डी हुई और इसका ऊपर का छिलका कड़ा हो गया। तदनन्तर सूर्य और सोम की सहायता से वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं और तब पहले पशु-पक्षी इत्यादि बने और अन्त में मनुष्य उत्पन्न हुए।

वेद को सुनने और समझनेवाले तब ही हुए। ऊपर वर्णित सृष्टि-क्रम से यह पता चलेगा कि द्वितीय मन्वन्तर में छन्द उच्चारण होने आरम्भ हुए और वर्तमान विवस्वत्सुत मन्वन्तर में मनुष्य उत्पन्न हुए तो वेदों का वर्तमान स्वरूप बना।

हमारे विचार में वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में मानव-सृष्टि हुई है और इसे लगभग ३८ लाख वर्ष हुए हैं। उसी समय वेदों का वर्तमान स्वरूप बना।

वर्तमान स्वरूप से हमारा अभिप्राय है वेदों का इस भाषा में कहा जाना जिसे हम वैदिक भाषा कहते हैं।

आज से ३८ लाख वर्ष पूर्व ऋषि जो अमैथुनी सृष्टि की उपज थे, उन्होंने इन वेदों को सुना और उस समय उपस्थित मनुष्यों को उनसे ज्ञानवान् कराया।

हमने यह भी बताया है कि राष्ट्री भाषा (सामान्य उपस्थित पदार्थों का ज्ञान करानेवाली भाषा) पहले प्रकट हुई। पीछे उस भाषा में वेद और वेदार्थ प्रकट किए गये।

दोनों के आविर्भाव में कितने काल का अन्तर था, यद्यपि इस विषय में ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह अंतर कुछ अधिक नहीं रहा होगा। यह इस कारण कि वेदवाणी जो बाद में आयी वह (यज्ञे जातः) रचना में अमैथुनी ढंग से उत्पन्न हुए लोगों की समझ में आयी। इसका अर्थ है कि मानव-सृष्टि-रचना के प्रारम्भिक काल में ही वेद वर्तमान रूप में आये।

आरम्भ में ये छन्द पदों और मन्त्रों में आये। इस विषय में भी वेद में कहा है। एक मन्त्र है—

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥

—ऋ० १-१६४-४१

अर्थात्—(गौरीः मिमाय सलिलानि) गाय के समान वेद वाणी मिमयाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् शब्द करती हुई जो तरल थी। (तक्षती एकपदी द्विपदी चतुष्पदी अष्टापदी नवपदी) वह वाणी एक पद, दो पद, आठ पदों और नौ पदों में कट-कटकर आयी। (सहस्राक्षरा परमे व्योमन्) सहस्रों अक्षरों में व्योम में से।

अभिप्राय यह है कि वेदवाणी कट-कटकर पदों में आयी और वे मन्त्र बन गये।

परन्तु ऋषियों ने मन्त्रों को सूक्तों, अनुवाकों इत्यादि में बाँटना तो बाद में किया, जिससे वे किसी विषय को प्रकट कर सके।

इनके सूक्तादि विभाग मानवकृत हैं। ये बदले भी जा सकते हैं। सूक्तों में विभाजन तथा सूक्तों और मन्त्रों के देवता का निश्चय कालान्तर में मन्त्रों का भाव समझकर किया गया है।

वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में तो वेद पदों में और मन्त्रों में ही आये, परन्तु बाद में इनको विषयानुसार बाँधा गया। व्यास नाम के ऋषि अथवा ऋषियों ने यह व्यवस्था की, यह परम्परा है।

एक व्यास हुए हैं जिन्होंने महाभारत लिखा है। परन्तु उन सत्यवती-नन्दन व्यास के अतिरिक्त भी कई व्यास हुए हैं। वायु-पुराण में लिखा है कि द्वापर युग में बीस से अधिक व्यास हुए हैं। व्यास वेदों के विद्वान् की एक उपाधि रही है।

अतः यह नहीं कहा जा सकता कि किस व्यास ने और किस काल में वेदमंत्रों को अनुवाकों और सूक्तों में बाँटा है।

: ६ :

वेद का विषय

वेद में क्या लिखा है, इस विषय में भी पाश्चात्य इण्डोलोजिस्टों से हमारा मतभेद है। बम्बई के 'भारतीय विद्या भवन' ने एक पुस्तक प्रकाशित की है। 'वैदिक एज' (Vedic Age)। वह पुस्तक यूरोपियन इण्डोलोजिस्टों की छाया ही है। इसके लेखकों ने वेद और वैदिक काल को समझा ही नहीं प्रतीत होता। यूरोपियन इतिहासज्ञों और वेद-विषय में भ्रान्त विद्वानों ने जो कहा है, वही इस पुस्तक में लिखा गया है।

उदाहरण के रूप में ऋग्वेद और वैदिक रिलिजन के लेखक प्रो० कैल्टन ने प्रो० मैक्समुल्लर के विचार अपनी पुस्तक (Rigveda and Vedic Religion) में लिखा है कि वेदों में बच्चों की-सी अर्थहीन और असम्बद्ध बातें लिखी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे पाश्चात्य लेखकों का अनुकरण 'वैदिक एज' के लेखकों ने किया है।

मैक्समुल्लर इत्यादि ईसाई मत के दीवाने थे और वे यह सहन नहीं कर सके कि हजरत आदम से पहले का रचित कोई ग्रन्थ मिल जाए। ईसाइयों के मूल ग्रंथ बाइबल के अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति आज से सात हजार वर्ष पूर्व हुई है।

न तो विज्ञान इसको ठीक मानता है, न ही भारतीय इतिहास से यह सत्य सिद्ध होता है।

मैक्समुल्लर सन् १८६८ में अपनी पत्नी को एक पत्र में लिख गए हैं—

I hope I shall finish that work and I feel convinced, though I shall not live to see it, yet this edition of mine (of the Rigveda) and the translation of the Vedas will hereafter tell to a great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in the country. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, 'the only way of uprooting' all that has been sprung from it during the last three thousand years.

(धर्मदेव विद्यामार्तण्ड द्वारा उद्धृत—'वेदों का यथार्थ स्वरूप' में पृष्ठ २५।)

इस पद का भावार्थ है—

मुझे आशा है कि मैं उस काम को (ऋग्वेद का सम्पादन) पूरा कर दूंगा और उसके तथा वेदों के अनुवाद के छपने से (यद्यपि मैं यह देखने के लिए जीवित नहीं रहूँगा) भारत और भारत में करोड़ों रहनेवालों के भाग्य पर प्रभाव पड़ेगा। यह उनके धर्म का मूल है और उस मूल के दर्शन कराने से ही उनके पिछले तीन हजार वर्ष से बने दुष्प्रभाव को मिटाया जा सकेगा।

यह इस पुस्तक का विषय नहीं कि इन दिग्भ्रान्त हीनबुद्धि लेखकों का विस्तृत खण्डन किया जाए। यह थोड़ा-सा नमूना इस बात को बताने के लिए दिया है, जिससे पाठकों को पता लग जाए कि भारत का वास्ता किन लोगों से पड़ा है।

जिन विद्वानों ने वेदों का अध्ययन, उनकी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर तथा व्याकरण और निरुक्त को जानकर किया है, वे वेदों को क्या समझते हैं, उनकी बात ही हम बताना चाहते हैं।

उदाहरण के रूप में मनु वेद के विषय में कहते हैं—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं·····

पूर्ण धर्म का मूल वेद में है। —(मनु० २-६)

और भी कहा है—

धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।

धर्म के जिज्ञासुओं के लिए श्रुतिः (वेद) प्रमाण है। —(मनु० २-१३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु आगे कहता है—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाऽप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥ —(मनु० १२-९४)

पितरों, देवों और मनुष्यों के लिए अनादि वेद नेत्र के समान हैं।

वृहदारण्यक उपनिषद में कहा है—

···अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस। —वृ० उ० ४-५-११

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद परमात्मा के ही श्वास मात्र हैं।

महाभारत का लेखक भी इस विषय में लिखता है—

अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।

—महाभारत शान्ति० २३२-२४

अर्थ हैं—आदि-अन्तरहित नित्य वाणी को परमात्मा ने प्रकट किया।

यास्क वेदों के एक महान् विद्वान हुए है। उन्होंने वेद के विषय में कहा है—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजनाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

—निरुक्त १-१८

अर्थ हैं - जो वेद को पढ़ता है, बिना अर्थ जाने, वह (मनुष्य नहीं) भार उठाने-वाला खम्बा होता है। (और) जो अर्थ को जानता है, (वह) सम्पूर्ण कल्याण को प्राप्त करता है।

देखना यह है कि वेदार्थ समझने और उसके अनुसार व्यवहार करने से कल्याण कैसे होगा। इसका कुछ दर्शन हम इस अध्याय में कराना चाहते हैं। परन्तु उससे पूर्व हम एक-दो बातें मध्यकालीन वेद के भाष्यकारों के विषय में लिख देना चाहते हैं। वेद के इन व्याख्याकारों के कारण वेद सम्बन्धी मिथ्या धारणा हुई है।

भारत में एक काल ऐसा आया कि तपस्या का मिथ्या अर्थ लगाकर फलदायक कर्म से हीन बनना अधिक हितकर समझा जाने लगा था। इस प्रकार की कई कथाएँ प्रचलित हो गईं कि अमुक व्यक्ति एक टाँग पर दस वर्ष तक खड़ा रहा और महात्मा कहाया। दूसरे ने कहा कि अमुक ऋषि पेड़ों से उलटे होकर टँगे रहे और सिद्धि पा गए।

तपस्या का यह अर्थ नहीं था। इससे लोगों ने यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना छोड़कर शरीर को कर्महीन और सामर्थ्यहीन बनाना ही तपस्या मान लिया गया।

सिद्धार्थ (बुद्ध) को भी कोई गुरु मिले तो वह उसे भूखे रहकर जीवन व्यतीत करना ही तपस्या बता गये। उन (बुद्ध) को समय पर ही ज्ञान हो गया कि यह तपस्या नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मिथ्या तपस्या के प्रचार से भारतीयों ने ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय व्यय करना व्यर्थ समझा और शरीर को हीन तथा क्षीण करने में ही सब प्रयास लगा दिए। परिणाम यह हुआ कि वेद जैसा विस्तृत ज्ञान का मूल स्रोत समीप होते हुए भी वे वेद को भूल गये। वेद के ज्ञाताओं का अभाव हो गया।

इसके साथ एक अन्य रोग मध्यकालीन विद्वानों को लग गया। वह रोग वेदान्त का था। वेदान्त मत जैसा शंकराचार्य के ग्रन्थों में प्रतिपादित किया गया है, उसका निष्कर्ष यह निकलता है कि वेद कर्मकाण्ड के ग्रन्थ हैं और कर्म मनुष्य को इस लोक में बाँधता है। अच्छे अथवा बुरे दोनों प्रकार के कर्म संसार में बाँधते हैं।

इस कथन का परिणाम यह हुआ कि लोग भूल गये कि अच्छे कर्म यदि ज्ञान-युक्त हों तो मोक्ष दिलानेवाले होते हैं। और ज्ञान किसी से प्राप्त करने से मिलता है। वेद भी तो परमात्मा के दिए ज्ञान के ग्रन्थ हैं। ज्ञान मनुष्य में स्वतः उत्पन्न नहीं होता। इसके लिए भगवद् गीता में विस्तार से कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

—भ० गीता ४-३४-३५-३६-३७

इन श्लोकों का अर्थ है—भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम कर सेवाभाव से प्रश्न पूछकर ज्ञान की जिज्ञासा करो तो तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन ज्ञान का उपदेश करेंगे।

उस ज्ञान को पाकर पुनः मोह को प्राप्त नहीं होवोगे और उस ज्ञान से अपने में (अपने समीप) सब भूतों को देखोगे (क्योंकि) उनमें मैं ही दिखाई दूँगा।

यदि तुम सब पापियों से भी अधिक पाप करनेवाले हो तो भी ज्ञानरूपी तरनी से पाप-सागर को पार कर जाओगे।

जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञान की अग्नि सब कर्मों को भस्म कर देगी।

ज्ञान की बहुत महिमा है। ज्ञान क्या है? यह वेद में लिखा है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि वेद में क्या लिखा है? उसके विषय में महर्षि स्वामी दयानन्द ने और अन्य विद्वानों ने कहा है कि वेद के छः अंग हैं और छः उपांग हैं।

अंग वेद में लिखे विषय के भाग हैं और उपांग वेद में लिखे ज्ञान की रक्षा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए मनुष्यकृत ग्रंथ हैं।

मनुष्य शरीर के अंग, शरीर का भाग ही होते हैं और एक अंग के न होने से शरीर अपंग हो जाता है। इसी प्रकार छः अंग वेद का स्वरूप ही हैं। ये छहों परस्पर ग्रथित हैं।

छः उपांग तो वैसे ही ज्ञान की रक्षार्थ हैं जैसे शरीर की रक्षा के लिए वस्त्र-मकानादि वस्तुएँ होती हैं।

छः अंग हैं—शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, छन्द, व्याकरण और निरुक्त।

छः उपांग हैं—पूर्व-मीमांसा दर्शन, उत्तर-मीमांसा दर्शन, सांख्यदर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्यायदर्शन और योग दर्शन।

अंग मूल रूप में वेद में हैं और उपांग वेद का अंग न होते हुए भी वेद की रक्षा के लिए लिखे गये हैं।

इन बारह विद्याओं के विषय में हम संक्षेप में लिखेंगे।

इन सब पर आचार्यों ने विशिष्ट ग्रंथ भी लिखे हैं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि वेद में दिये मूल ज्ञान के विपरीत अंगों-उपांगों में कहीं कुछ आ जाए तो उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जहाँ कहीं वेद में और उनके अंगों पर लिखे अथवा उपांगों के ग्रंथों में अन्तर दिखाई दे तो वेद को प्रमाण माना जाता है। वेद-कथन इन अंगों-उपांगों पर लिखे ग्रंथों के कथन की एक स्वतन्त्र परीक्षा भी है। वह परीक्षा है आधारयुक्त तर्क। वेदार्थ अथवा वेद-विषय पर लिखे ग्रंथ के अर्थों की परीक्षा में निरुक्त यह सकता है—

···अयं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढः। अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः।
न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः। प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः।

—निरुक्त १३-१२

अर्थात्—इस प्रकार मन्त्रों के अर्थ विचार करने की ऊहः (जिज्ञासा) दिखाई दी। चाहे श्रुति प्रमाण से, चाहे तर्क से, प्रसंग का नाश करके नहीं, निर्वचन करना चाहिए। प्रकरण के अनुकूल निर्वचन करना चाहिए।

यह वेदों के अर्थ करने के विषय में कहा गया है। वास्तव में वेद सम्बन्धी ग्रंथों की यही प्रक्रिया है, जिससे अर्थ समझे जा सकते हैं। यहाँ तर्क के विषय में बता देना चाहिए। कुछ लोग तर्क को भ्रम-मूलक समझते हैं। परन्तु देखा जाय तो दर्शनशास्त्र इस तर्क के आधार पर ही वेद तथा वैदिक ज्ञान की सिद्धि करते हैं। परन्तु उस तर्क में एक शर्त है। वह इस प्रकार है—

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः।

—ब्र० सू० २-१-११

(तर्क अप्रतिष्ठानात् अपि) तर्क भी अप्रतिष्ठित् होने से (प्रभावित नहीं)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्यथा अनुमेयं इति) नहीं तो अनुमान प्रमाण (असिद्ध हो जायेगा) (चैत् एवम्) यदि ऐसा कहेंगे तो (अविर्मोक्ष प्रसङ्गः) (अर्थ जानने में) मोक्ष (सफलता) न मिलने की अवस्था हो जायेगी।

इसका अभिप्राय यह है कि तर्क प्रतिष्ठित ही होना चाहिये। अप्रतिष्ठित तर्क भी अर्थ जानने में बाधा खड़ी कर देगा।

प्रतिष्ठित तर्क के अर्थ सांख्यदर्शन ने इस प्रकार समझाये हैं—

युक्ततोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते। (१-५९)

(युक्ततः अपि) युक्ति से भी (न बाध्यते) बाधा नहीं होती [ज्ञान प्राप्त करने में] (दिङ्मूढवत् अपरोक्षात् ऋते) जैसे प्रत्यक्ष के बिना दिशा भूल गया मनुष्य होता है, वैसे ही युक्तिविहीन मनुष्य होता है।

और युक्ति का आधार प्रत्यक्ष कैसे सहायक होता है? वह दर्शनाचार्य कपिल अगले सूत्र में कहते हैं—

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः। (१-६०)

अर्थात्—(अचाक्षुषाणाम्) जो इन्द्रियों का विषय न हो (अनुमानेन बोधो) इसका अनुमान से ज्ञान होता है। (धूमादिभिः वह्नेः इव) जैसे धूमादि देखने से अग्नि का ज्ञान होता है।

यह आधारयुक्त युक्ति है। इसको सांख्याचार्य 'अनुमान' कहता है।

हमने यह बताया है कि वेद के छः अंग हैं। इसमें तीन अंग विद्याओं का वर्णन करते हैं और तीन भाषा के विषय में कहे हैं।

वेद की विषय-वस्तु तो तीन ही हैं। तीन में ही संसार के सब तत्त्वों का वर्णन आ जाता है। तीन विषय हैं—शिक्षा, कल्प तथा ज्योतिष।

(१) शिक्षा का अभिप्राय है जिससे मनुष्य को मनुष्य बनकर उस संसार में रहने का ढंग बताया जाये।

यहाँ एक बात यह समझ लेनी चाहिये कि कुछ लोग शिक्षा का अर्थ वेद को समझने की विद्या करते हैं। हमारा उनसे मतभेद है। शिक्षा का अर्थ है मनुष्य को संसार में व्यवहार का ज्ञान कराना। यह मुख्यतः यजुर्वेद का विषय है।

यजुर्वेद में मनुष्य के व्यवहार के विषय में ही बताया है। यह हम अगले अध्याय में कुछ विस्तार से कहेंगे।

(२) कल्प का अर्थ है सृष्टि की रचना। इसमें सृष्टि-निर्माण, सृष्टि के चलने और अन्त में सृष्टि के प्रलय का वर्णन है। इसमें ही पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का मूल आ जाता है। वर्तमान युग की जितनी समस्याएँ हैं, वे सब मूल रूप में वेद में हैं। इनका वर्णन ऋग्वेद में मिलता है।

(३) ज्योतिष विषय, मूल रूप में अथर्ववेद में है।

वेद के अन्य तीन विषय छन्द, व्याकरण और निरुक्त, तो वेद की वर्णन-शैली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विषय में ही हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन भी आगे चलकर करेंगे।

छः उपांग वेद के पूर्वोक्त विषयों को युक्ति से प्रकट करने का प्रयास हैं। जो कुछ सिद्धांतात्मक रूप में वेद में कहा है, उसको तर्क द्वारा दर्शनशास्त्रों में सिद्ध किया गया है।

उदाहरण के रूप में ज्योतिष और यजुर्वेद का विषय पूर्व-मीमांसा दर्शन में वर्णित है। कल्प के विषय का वर्णन उत्तर-मीमांसा (ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्त दर्शन) और सांख्यदर्शन में मिलता है। वैशेषिक दर्शन भी कल्प विषय की एक शाखा का ही वर्णन करता है। न्यायदर्शन में तो तर्क करने का ढंग बताया है और योग दर्शन में मन, बुद्धि तथा शरीर को सुचारु रखने और इससे लाभ उठाने का वर्णन है।

यहाँ थोड़ा-सा ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों के विषय में भी कह दिया जाये तो अच्छा होगा।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकानेक वैदिक विषयों का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। यह साहित्य का एक बहुत विशाल भण्डार है। फिर भी ये ग्रन्थ मानवकृत हैं। ये उस प्रकार ऋषियों को प्रस्फुरित नहीं हुए जैसे वेद मन्त्र हुए थे। ये ग्रन्थ वेद-मन्त्रों की व्याख्या करने के लिए हैं। ऋषियों ने जैसा उन्हें समझा वैसा कहा है।

वस्तुतः ब्राह्मण शब्द ग्रन्थ के अर्थों में नहीं है। ग्रन्थ अर्थ में ब्राह्मण शब्द नपुंसक लिंग में प्रयोग होता है।

प्राचीन ग्रन्थों में ब्राह्मण और मन्त्र शब्द पर्यायवाचक नहीं माने गये।

सायण कहता है—जो परम्परा से मन्त्र नहीं, वह ब्राह्मण है। और जो ब्राह्मण नहीं, वह मन्त्र है।

(सायण-ऋग्वेद भाष्य भूमिका उपोद्घात)

इसी प्रकार स्कन्द स्वामी लिखते हैं—

तथा 'अमीमदन्त पितरो यथा भागमावृषायिषत' इत्यस्य 'यथाभागमाशिषु-रित्येवैतदाहे' इति शतपथब्राह्मणे विवरणात्··· (ऋ० १-३२-३)

स्वामी दयानन्द का भाव इसमें स्पष्ट है। वह कहते हैं—

ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि।

—अनुभ्रमोच्छेदन (सं० १९३७), पृ० ६

अर्थ है—ब्राह्मण ग्रंथ वेदों की व्याख्या के लिए हैं, वे वेद नहीं हैं।

कुछ मध्यकालीन विद्वान् ब्राह्मणों को वेदों का भाग मानते हैं परन्तु ब्राह्मण मनुष्यकृत होने से वेद नहीं हो सकते।

ऐतरेय ब्राह्मण २९-९ में एक पद है—**दूरोहण रोहति तस्योक्तं ब्राह्मण।**

दूरोहण यज्ञ जो स्वर्ग में ले जाता है, वह ब्राह्मण है।

शतपथ ब्राह्मण के प्रथम दो खण्ड भी यज्ञों के विषय में ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार का यज्ञ इन ब्राह्मणों में वर्णन किया गया है वैसा वेदों में नहीं है। वेदों में यज्ञ का अर्थ है किसी प्रकार का लोक-कल्याण का कार्य। जब प्राकृतिक वस्तुओं को विज्ञान और शिल्प (science & technoloy) से उपयोगी बनाया जाए तो वेद के अनुसार यह भी यज्ञ होगा।

सृष्टि-रचना को भी यज्ञ-कार्य कहते हैं। इसके अनुसार संतान उत्पन्न करना भी यज्ञ ही माना जाता है। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का अर्थ होम किया गया है।

उदाहरण के रूप में शतपथ ब्राह्मण में प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में एक स्थान पर लिखा है—

अथ शूर्पञ्चाग्निहोत्रहवणीञ्चादत्ते कर्म्मणे वां वेषाय वामिति। यज्ञो वै कर्म्म यज्ञाय हि तस्मादाह कर्म्मणे वामिति वेषाय वामिति वेवेष्टीव हि यज्ञम्।

—शत० ब्राह्मण १-१-२-१

इसका अर्थ है—अब सूप और अग्निहोत्र-हवणी को लेता है। मन्त्र (यजु० १-६) में कर्म के लिए तुम दोनों को व्यापकत्व के लिए। यज्ञ कर्म है कर्म के लिए अर्थात् यज्ञ के व्यापकत्व के लिए तुम दोनों को, क्योंकि यजमान यज्ञ में व्यापक होता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जब अग्निहोत्र करने बैठें तो यजमान हाथ में सूप और हवणी ले और मन्त्र (यजु० १-६) बोले और कहे कि तुम दोनों को मैं लेता हूँ। क्योंकि यजमान यज्ञ में व्यापक होता है।

अगली कण्डिका में लिखा है—

अथ वाचं यच्छति। वाग्वै यज्ञोऽविक्षुब्धो यज्ञं तनवाऽइत्यथ प्रतपति प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा आरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातय इति वा॥

—शत० १-१-२-२

अर्थात्—अब वाणी रोकता है। वाणी यज्ञ है। इस प्रकार यज्ञ को निर्विघ्न पूरा करूँ। यह तात्पर्य है। अब इन दोनों (सूप और हवणी) को आग पर तपाता है। यह इस मन्त्र को बोलकर (यजु० १-१७) झुलस गया राक्षस झुलस गये शत्रु। जल गया राक्षस। जल गये शत्रु।—इत्यादि।

अग्निहोत्रादि यज्ञ की प्रक्रिया ब्राह्मण ग्रन्थों में बताई है।

यह कहा जाता है कि यज्ञादि कर्मों में वेद-मन्त्रों का उच्चारण इसलिए किया जाता है जिससे वेद-मन्त्र स्मरण रह सकें। जिस काल में यज्ञों की प्रथा चली थी, उस समय तक मुद्रणालय नहीं बने थे। इस कारण वेद ग्रन्थ मुद्रित हुए उपलब्ध नहीं थे और इनको कण्ठस्थ करना पड़ता था। इनको स्मरण रखने के लिए नित्य-प्रति के कार्यों में वेद-मन्त्रों के उच्चारण की प्रथा निकाली गई थी।

यह स्पष्टीकरण सत्य ही प्रतीत होता है। परन्तु हमारा प्रश्न यह है कि आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी क्या आवश्यकता है? साथ ही इससे अनावश्यक कर्म की महत्ता बन गयी है और कर्म का विधि-विधान ऐसा स्थिर हुआ है कि कर्म की विधि मुख्य हो गयी है और कर्म का उद्देश्य गौण हो गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदों को समझाने का भी यत्न किया है। इसका भी एक उदाहरण लिया जा सकता है। एक मन्त्र है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

—ऋ० २-१२-१

इस सूक्त का देवता इन्द्र है। और इन्द्र का ही अर्थ इसमें बताया है। अर्थ है—(जो जातः प्रथमः) जो पहले उत्पन्न हुआ। (मनस्वान् देवः) मन शक्ति को रखनेवाला देव था। (क्रतुना देवान् पर्यभूषत्) दिव्य गुणयुक्त पदार्थों को बनानेवाला और सुन्दर रूप देता है।

(यस्य नृम्णस्य मह्ना शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्) जिसके महान् धन (शक्ति) के भय से पृथिवी और आकाश काँपते हैं। वह इन्द्र जानो।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सृष्टि-रचना के समय इन्द्र देवता सबसे पहले उत्पन्न हुआ। यह संसार के देवताओं का निर्माण करता है और उनको सुन्दर बनाता है। इसके महान् भय तथा सामर्थ्य से पृथिवी और आकाश भयभीत रहते हैं।

अब इसकी व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की है। वहाँ कहा है—

असद्वाऽइदमग्रऽआसीत्। तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्तदाहुः के तऽऋषय इति प्राणा वाऽऋषयस्ते यत्पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादृषयः॥

स योऽयं मध्ये प्राणः। एषऽएवेन्द्रस्तानेष प्राणान्मध्यत ऽइन्द्रियेणैन्द्ध तद्वैन्द्ध तस्मादिन्ध ऽइन्धो ह वै तमिन्द्रऽइत्याचक्षते परोऽक्षं परोऽक्षकामा हि देवास्तऽइद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त॥ —शत० ६-१-१-१,२

अर्थ हैं—पहले यह असत् (अस्वरूपवान् अथवा अव्यक्त) ही था। तब कहते हैं कि वह अव्यक्त क्या था? वह अव्यक्त ऋषि ही थे। तब कहते हैं कि वे ऋषि कौन थे? प्राण ही वे ऋषि थे जिन्होंने सबसे पहले इस सृष्टि को चाहा। श्रम तथा तप किया तो खिन्न हो गये। इस कारण उनका नाम ऋषि हुआ।

यह प्राण ही मुझमें इन्द्र है। इसी इन्द्र ने अपने इन्द्रिय अर्थात् पराक्रम से इन प्राणों को दीप्त किया। दीप्त करने से 'इन्ध' (दीप्ति करनेवाला) नाम पड़ा। उसी दीप्त करनेवाले को इन्द्र कहते हैं। इन्द्र परोक्ष (छुपा अथवा अदृश्य) है। देव परोक्ष प्रिय होते हैं। दीप्त हुए इन प्राणों ने सात पुरुष उत्पन्न किये।

अभिप्राय यह है कि सृष्टि-रचना के समय पहले इन्द्र उत्पन्न हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह परमात्मा का तेज है जो सबसे पहले उत्पन्न हुआ था। प्रकृति के अव्यक्त स्वरूप का अभिप्राय है परमाणु। ये ऋषि कहे जाते हैं। ये ऋषि ही प्राण थे। प्राण का अभिप्राय सत्त्व, रजस्, तमस् से है।

सांख्यदर्शन में कहा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। —सां० १-६१

अभिप्राय यह है कि प्रकृति सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था का नाम है। इन सत्त्व, रजस्, तमस् प्रकृति के अंशों ने ही सृष्टि की रचना आरम्भ की। परंतु कैसे की? यह ब्राह्मण ग्रन्थ इस प्रकार वर्णन करता है। इन्द्र इन सबमें परोक्ष (छुपकर) बैठा हुआ था। सब परमाणुओं में क्योंकि परमात्मा सर्वव्यापक होने से सब परमाणुओं में उपस्थित था और इन्द्र परमात्मा की शक्ति होने से वहाँ था, उस इन्द्र ने श्रम और तप से प्राणों को (ऋषियों)को तप्त किया और दीप्त कर दिया।

तब प्राण अर्थात् सत्त्व, रजस्, तमस् जाग पड़े और रचना-कार्य करने लगे।[1]

वेद कहता है कि इन्द्र वह देवता है जो सबसे पहले उत्पन्न हुआ और जगत् के देवताओं के उत्पन्न करने और उनको विभूषित करने में सफल हुआ।

शतपथ ब्राह्मण में बताया है कि वह परमात्मा का तेज है जिसने परमाणु की साम्यावस्था भंगकर रचना-कार्य आरम्भ किया था।

परमात्मा की भाँति उसका तेज परमाणु में परोक्ष में था और परोक्ष में रहकर ही कार्य करता है।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ वेद की व्याख्या भी करते हैं। परन्तु यज्ञों की अपनी विशिष्ट प्रक्रिया-निर्माण कर उन्होंने भ्रम ही फैलाया है।

यज्ञ का अभिप्राय है संसार का कोई भी कार्य जो सबके कल्याण के लिए हो। इस विषय में एक वेद-मन्त्र है—

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥ —यजु० १-३

अर्थात्—(वसोः पवित्रमसि शतधारम्) यज्ञ सैकड़ों विधियों से पवित्र करनेवाला है। (वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्) यज्ञ सहस्रों उपायों से पवित्र करनेवाला है। (देवः सविता त्वा पुनातु) सूर्य देवता उस (यज्ञ) को पवित्र करे। (वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः)। सफलतापूर्वक पवित्र करनेवाले यज्ञ सैकड़ों धाराओं से हमारी कामनाओं को पूर्ण करें।

इस मन्त्र में सूर्य से प्राप्त ऊर्जा से श्रेष्ठ कर्म करने का संकल्प किया गया है। वसु के अर्थ शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ किये हैं। (यज्ञो वै वसुः—शत० १-५-४-२)

---

१. विषय की व्याख्या के लिए लेखक की रचना 'सांख्यदर्शन सरल, सुबोध भाषा भाष्य', पृ० १०२ से १०३ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ इस मन्त्र में कहा है कि सैकड़ों सहस्रों विधियों से यज्ञ (निस्वार्थ भाव से किया कर्म) लाभ और सुख पहुँचाता है। हम जो विविध कर्म इस संसार में करते हैं, वे कार्य सूर्य की सहायता से सफल होते हैं। क्योंकि कार्य करने की सामर्थ्य सूर्य द्वारा ही इस पृथिवी पर प्राप्त होती है।

आगे कहा है—

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः।
इन्द्रस्य त्वा भागँ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यँ रक्ष॥

—यजु० १-४

(सा विश्वायुः) वह अर्थात् यज्ञ सम्पूर्ण आयु का देनेवाला है। (सा विश्वकर्मा) वह सब कार्यों को सिद्ध करनेवाला है। (इन्द्रस्य त्वा भागँ सोमेन आ तनच्मि) उस परमात्मा के तेज (शतपथ १-६-१-१ के अनुसार) को शांति से हृदय में स्थित करता है। (विष्णो हव्यं रक्ष) हे सर्वव्यापक परमेश्वर, मेरे यज्ञ के साधनों की रक्षा करो।

वह सम्पूर्ण प्राणियों की (अर्थात् जगत् की) आयु को और इस संसार में होनेवाले सम्पूर्ण कामों को सिद्ध करनेवाला और सबको धारण करनेवाला है। यह सब वह कैसे सम्पन्न करता है, इसका भी रहस्य बताया है। कहा है कि इन्द्र (ईश्वर का तेज) का एक अंश ही है जो सूर्य में प्रकट हो रहा है। उस तेज की शक्ति से मैं सामर्थ्य ग्रहण करूँ। सर्वव्यापक परमात्मा जिसके तेज से सूर्य के द्वारा इस पृथिवी पर हो रहा यज्ञ सफल हो रहा है वह इसमें साधनों की रक्षा करे।

यज्ञ की यह व्याख्या जो हमने की है यजुर्वेद के अगले मन्त्रों से भी इसी प्रकार स्पष्ट होती है।

हमारा यह मत है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में जहाँ वेद के कुछ जटिल प्रश्नों पर व्याख्या है, वहाँ यज्ञ के एक विशेष रूप का भी वर्णन है।

इससे अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं। जब यज्ञ का अर्थ अग्निहोत्र ही ग्रहण किया गया तो श्रौत-सूत्रों में नवग्रह की पूजा आरम्भ हो गयी। वेद में भी नवग्रहादि की पूजा घुस आयी।

अग्निवेश गृह्य सूत्र-५, वैखानस गृह्य सूत्र ४-१३-१४-१, बोधायन गृह्य सूत्र शेष १६,१७ इत्यादि में नवग्रह पूजा आ गई।

इस प्रकार मन्त्रों के यज्ञ-कर्म के साथ विनियोगवाले मन्त्रार्थ भ्रष्ट हुए। 'शन्नो देवी' से शनिश्चर की पूजा और 'उद्बुध्यस्वाग्ने' से बुध की पूजा मानी गयी।

इसका यह भी परिणाम हुआ कि कई काल्पनिक मन्त्रों की सृष्टि हुई। साथ ही मन्त्रों के मिथ्या विनियोग किये गये। मन्त्रार्थ कुछ हैं और क्रिया कुछ हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे बड़ी बात यह हुई कि द्रव्य यज्ञों के साथ पशु यज्ञ आरम्भ हो गये।

इन सब कारणों से हम ब्राह्मण ग्रन्थों को जहाँ वेदार्थ समझने में सहायक मानते हैं, वहाँ इन्हें कई स्थलों पर वेदार्थ भ्रष्ट करनेवाले भी मानते हैं।

इसी कारण स्वामी दयानन्द ने कहा है कि जहाँ-जहाँ ब्राह्मणादि ग्रन्थ वेदानुकूल हों, ये प्रमाण हो सकते हैं और जहाँ-जहाँ वेद-विरुद्ध हों, वहाँ इनको नहीं मानना चाहिए। वेद-विरुद्ध का एक उदाहरण दे दिया जाए तो बात स्पष्ट हो जाएगी।

शतपथ ब्राह्मण (१-१-२-४) में कहा है—अब वह धान की गाड़ी की ओर चलता है। चलता हुआ वह मन्त्रांश बोलकर 'उर्वन्तरिक्षमन्वेमि' (मैं अन्तरिक्ष में चलता हूँ) कहे।

अन्य दिशा में खुले बन्द दोनों ओर चलता है। वह पुरुष भी खुले बन्द दोनों ओर चलता है। इस प्रकार वह यह मन्त्र बोलकर अन्तरिक्ष को दुष्ट राक्षसों से मुक्त कर देता है।

अब तनिक उस मन्त्र को देखिए जिनका मन्त्रांश ऊपर दिया गया है। मन्त्र है—

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्त ँ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥ —यजु० १-७

इस मन्त्र का अर्थ है—भली प्रकार परीक्षा कर दुष्ट और परद्रव्यापहारी (लेकर न देनेवाले) को संतप्त करूँ और नष्ट कर दूं। इस प्रकार मैं उन्नति और सुख को प्राप्त होऊँ।

इस मन्त्र को यज्ञ के साथ सम्बोधित करने के लिए इसे उस समय उच्चारण करने को कहा है, जब मनुष्य यज्ञ के लिए छकड़े में हवि लेने जाए।

प्रायः यज्ञ के लिए हवि तो पात्रों में लाई जाती है। उसे लाने के लिए छकड़ों की आवश्यकता ही नहीं होती और अन्तरिक्ष की सैर करने की आवश्यकता नहीं होती।

यह स्पष्ट है कि मन्त्र का अर्थ अग्निहोत्रादि से सम्बन्ध नहीं रखता। न ही केवल मन्त्र बोल देने से रक्षा और आततायी नष्ट होंगे।

इस प्रकार से अनेक मन्त्रों का विनियोग अर्थ का अनर्थ करनेवाला होगा।

उपनिषदों में भी बहुत बातें हैं जो संदिग्ध अर्थवाली हैं।

उपनिषद् का भी एक उदाहरण दिया जा सकता है। वृहदारण्यक उपनिषद् ३-४ में यह वर्णन है—

चाक्रायण ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि वह साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तर आत्मा कौन है? उसकी व्याख्या करो। इस प्रश्न के उत्तर में याज्ञवल्क्य कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारं शृणुया न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः। एष त आत्मा सर्वान्तरोऽतोऽन्यदार्त...

—बृहदा० ३-४-२

अर्थात्—तुम दृष्टि के दृष्टा को नहीं देख सकते। श्रुति के श्रोता को नहीं सुन सकते। मति के मत्ता को मनन नहीं कर सकते। विज्ञाति के ज्ञाता को नहीं जान सकते। तुम्हारा यह आत्मा (जो यह सब कुछ करता है) सर्वान्तर है। इससे भिन्न नाशवान हैं।

यह कथन वेद-विरुद्ध है। यह तर्क के भी विरुद्ध है।

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थानों पर भी वेद-विरुद्ध कथन हैं।

अतः हमारा यह कहना है कि वेद से हटकर जो कथन हैं, उनको स्वीकार करने के लिए बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

ये ग्रंथ (ब्राह्मण अथवा उपनिषद्) परस्पर विरुद्ध तो हैं ही और अपने आप में भी विरोध करते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय खण्ड

: १ :

शिक्षा

हम यह बता चुके हैं कि शिक्षा का मूल यजुर्वेद में है और इस पर तर्क पूर्व-मीमांसा दर्शन में किया गया है।

शिक्षा का आशय है मनुष्य को इसका ज्ञान कराना कि इस संसार में किस प्रकार रहना चाहिए।

प्रश्न है कि मनुष्य को ही क्यों यह ज्ञान करना, इतर जीव-जन्तुओं को क्यों नहीं ?

पृथिवी पर जितनी भी प्राणी-योनियाँ हैं, सबमें केवल मनुष्य ही वह योनि है जो अपने कर्मों की स्वयं अधिकारिणी है। अन्य योनियाँ यम-योनियाँ कहाती हैं। अर्थात् उन योनियों में किए कर्म अपने अधीन नहीं होते। भूख लगती है तो खाना खा लेते हैं। प्यास लगती है तो पानी पी लेते हैं। यदि भूख-प्यास लगने पर भी खाने-पीने को कुछ नहीं मिलता तो विवश होकर मुख देखते रहते हैं। कुछ कर नहीं सकते। क्योंकि कर्म करने में केवल मनुष्य ही स्वतन्त्र है।

यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र ही इस विषय में चमत्कारक है। मन्त्र इस प्रकार है—

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण ऽआप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशँ सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीयजमानस्य पशून्पाहि ।। —यजु० १-१

इस मन्त्र का देवता (विषय) है सविता (सूर्य)। मन्त्रार्थ इस प्रकार है—

(त्वा ऊर्ज्जे त्वा इषे वायवः स्थ) तुम्हारी दी हुई ऊर्जा और तुम्हारा दिया हुआ अन्न क्रियाओं का सिद्ध करनेवाला।(वः) हमें (देवः सविता प्रार्पयतु) सविता देवता संयोजन (निर्माण) करे। (श्रेष्ठतमाय कर्मण) श्रेष्ठ कर्म करने के लिए। (आप्यायध्वम् अघ्न्याः) जो अघ्न्य है वह उन्नति को प्राप्त हो। (इन्द्राय भागं प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्मा) सामर्थ्य का भाग प्रजाओं को प्राप्त हो, वे निरोग हों और ज्वरों से रहित हों।

(मा वः स्तेनः मा इशत) इसमें चोर-डाकू और पापी न हों। (सः ध्रुवा अस्मिन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपतौ स्यात वह्वी: यजमानस्य पशून पाहि) वह (सविता) हम में स्थिर रक्षक हो जाए और गृहस्थियों के पशुओं की रक्षा करे।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि परमात्मा ने सूर्य से दो पदार्थ इस पृथिवी पर दिए हैं। एक ऊर्जा और दूसरा अन्न। अन्न भी सूर्य से आ रही ऊर्जा से ही संपुष्ट होता है।

अन्न में दो तत्त्व मुख्य हैं। कार्बोहाइड्रेट (स्टार्च इत्यादि) और प्रोटीन। ये दोनों पदार्थ पेड़-पौधों में सूर्य-रश्मियों से बनते हैं। यदि पेड़-पौधों पर सूर्य-रश्मियाँ न पड़ें तो ये नहीं बन सकते। सब प्राणियों का जीवन इन दो पर ही निर्भर करता है।

इस मन्त्र में कहा है कि देव सविता द्वारा अन्न और ऊर्जा से हम और हमारे अघ्न्य पशुओं (पालतू जानवरों) का रक्षण हो। साथ ही कहा है कि हममें जो प्राणशक्ति ऊर्जा से आती है उससे हम धर्मकार्य करें जिससे हमारा यश और हमारी कीर्ति बढ़े।

शिक्षा में कर्म का प्रथम पाठ यही है कि कर्म करने की शक्ति परमात्मा से सूर्य के द्वारा हमें प्राप्त होती है। हम उसका सदुपयोग करें।

पृथिवी पर विद्युत्, अग्नि तथा अन्य शक्ति का स्रोत भी केवल सूर्य ही है। कोयला और तेल में भी शक्ति सूर्य से ही संचित होती है।

और सूर्य की शक्ति का संचय स्थान कहाँ है? यह कहा जाता है कि सूर्य पर हाइड्रोजन के ऐटम (परिमण्डल) संयुक्त होकर हीलियम के परिमण्डल बना रहे हैं और उनसे शक्ति निकलती है। उनका संयुक्त होना भी तो किसी के करने से ही होता है। वह कौन है? कहा है कि वह परमात्मा का तेज है, जिससे यह हो रहा है।

इस प्रकार सब कर्मों का स्रोत शक्ति और शक्ति का स्रोत सूर्य अर्थात् परमात्मा बताकर कर्म की व्याख्या आरम्भ की है।

इसी (यजु:) वेद के अगले तीन मन्त्र वसु के सम्बन्ध में हैं। वसु का अर्थ सामान्य भाषा में यज्ञ है। यज्ञ की व्याख्या की गई है। वह सब कार्य जिससे मनुष्य मात्र को लाभ हो, उसे यज्ञ कहते हैं। इस यज्ञ-कर्म में परमात्मा के सृष्टि-रचना-कार्य से लेकर मनुष्य के नित्य जीविकोपार्जन तक के सब कर्म आ जाते हैं। शर्त दो हैं कि सब कार्य लोक-हित में हों और उनसे किसी को हानि न पहुँचे।

निर्माण कर्म से होता है। इसे सामान्य भाषा में प्रयत्न अर्थात् काम कहते हैं। यजुर्वेद में कहा है कि जिस कार्य से प्राकृतिक पदार्थों से उपयोगी पदार्थ निर्माण हों, वह कार्य यज्ञ है।

उदाहरण के रूप में कोई हल चलाकर और भूमि में बीज डाल अन्न उत्पन्न करता है, वह यज्ञ करता है। इसी प्रकार कोई कच्चा लोहा लेकर उससे लोहे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गार्डर, सलाखें इत्यादि बनाता है तो वह यज्ञ करता है। कोई अन्य चूना-सीमेंट-ईंटें इत्यादि बनाता है तो वह भी यज्ञ करता है।

इस प्रकार एक छोटे-से-छोटा कार्य अर्थात् मोची तथा भंगी के कार्य से लेकर सुन्दर भूषण अथवा वस्त्र बनानेवाले तक के सब कार्य यज्ञ होते हैं। इसमें केवल एक बन्धन होता है। वह यह कि कर्म करने में लोक-हित की भावना रहे। तब ही वह यज्ञ होता है अन्यथा यह स्वार्थ है। कई लोग स्वार्थ के कार्य को असुर-यज्ञ कहते हैं। वैसे शास्त्रों में तो केवल उसी कर्म को यज्ञ कहा है जिससे अधिक-से-अधिक लोगों का हित सिद्ध हो सके।

ऐसा कार्य करता हुआ मनुष्य जब उसमें से अपने परिश्रम के अनुसार पारिश्रमिक ले तब ही उसका कार्य यज्ञ के लक्षणों में आता है।

यजुर्वेद में एक अन्य मन्त्र में कहा है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ —यजु० १-५

अर्थात्—(अग्ने) हे शक्ति-स्वरूप परमात्मा। (व्रतपते व्रतं चरिष्यामि) तू व्रतों का स्वामी है। मैं भी व्रत कर रहा हूँ। (तत् शकेयम् तत् मे राध्यताम्) उस व्रत-पालन की मुझमें शक्ति हो। (मैं उसे पूर्ण कर सकूँ।)

(इदम् अहम् अनृतात् सत्यं उपि एमि) इस व्रत पालन करने से मैं अनृत से सत्य को प्राप्त होऊँ।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि मनुष्य जब इस संसार-संघर्ष में सम्मिलित हो तो शक्तिस्वरूप परमात्मा से प्रार्थना करे कि वह अब इस गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने लगा है। इसे वह सफलतापूर्वक पालन कर सके। ऐसा व्रत करे। हे परमात्मा, मैं इस संसार में जीवन का व्रत पालन कर सकूँ और इस व्रत का पालन करता हुआ अनृत को छोड़कर सत्य का पालन कर सकूँ।

वेद का यह कथन उन युवा दम्पती के लिए है जो विवाह के उपरान्त अभी गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने लगे हैं।

शतपथ ब्राह्मण में इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि दम्पती जीवन आरम्भ करने के समय दो अग्नियों में खड़ा होकर पूर्वोक्त व्रत ले।

दो अग्नियों का अभिप्राय भी वहाँ कहा है। एक गार्हस्पत्य अग्नि है और दूसरी है आह्वनीय। अग्नि का अभिप्राय है दम्पती की सामर्थ्य।

वेद अपने प्रथम मन्त्र में कह चुका है कि प्राणी की शक्ति परमात्मा की ही दी हुई है। परमात्मा सूर्य के द्वारा पृथिवी पर अपनी शक्ति की वर्षा कर रहा है। वही शक्ति मनुष्य की इन्द्रियों में, प्राण का सूक्ष्म कार्य करती है।

शतपथ ब्राह्मण का यही अभिप्राय है कि इस शक्ति को दो भागों में बाँटकर मनुष्य उसके बीच में खड़ा होकर व्रत ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दो अग्नियों में एक है गार्हस्पत्य अग्नि। अर्थात् घर-गृहस्थी को चलाने के लिए शक्ति। मनुष्य अपनी सामर्थ्य का आधा भाग ही घर के पालनपोषण पर व्यय करे और आधी शक्ति आह्वनीय कार्यों में अर्थात् लोक-कल्याण के कार्यों में व्यय करे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अपनी आय का आधा भाग अपने और अपने परिवार के कार्यों में व्यय करे और आधा लोक-कल्याण के कार्य में व्यय करे। लोक-कल्याण के कर्मों को ही यज्ञ कहा है।

यूँ तो यजुर्वेद में १९७५ मन्त्र हैं। सबके विषय में यहाँ नहीं बताया जा सकता। सब विषयों का नाम देना भी यहाँ सम्भव नहीं। कुछ एक विषयों का ही उल्लेख किया जा सकता है। यजुर्वेद में घर (रहने का स्थान) जो चोर-डाकुओं से रक्षा कर सके, बनाने के लिए कहा है।

यहाँ तक कि घर में रसोई के लिए, सिल-बट्टा, अन्न पीसने की चक्की इत्यादि की आवश्यकता भी बताई है।

यह भी कहा है कि तीन प्रकार की अग्नियाँ हैं। एक रसोई पकाने की, दूसरी अग्निहोत्र करने की और तीसरी मृत शव को जलाने की। मृत शव को जलानेवाली अग्नि घर से दूर होनी चाहिए।

मकान बनाने के विषय में कहा है कि दो पदार्थ पवित्र करनेवाले हैं। सूर्य-रश्मियाँ और जल। दोनों परमात्मा से सूर्य द्वारा मिलते हैं। खिड़कियों और दर-वाजेवाला मकान हो तो उसमें सूर्य-रश्मियाँ आकर मकान को पवित्र करेंगी।

इन दोनों को प्राप्त कर उन्नति करनी चाहिए। इससे घर में रहनेवाला गृहस्थ धनवान हो जाता है।

इस प्रकार घर का और घर में रहने का वृत्तान्त बताकर अन्न उत्पन्न करने के विषय में भी कहा है।

घर और अन्न का प्रबन्ध हो जाने के उपरान्त वेद-ज्ञान की प्राप्ति के लिए यत्न करने को कहा है। ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त दुष्ट और चोर-डाकुओं को नष्ट करने के विषय में कहा है।

दुष्टों पर विजय प्राप्त करने के लिए अन्न ही शक्ति का स्रोत है।

इस प्रकार सुरक्षित होकर सृष्टि (सन्तान उत्पन्न) करे।

दूसरे अध्याय में घर-गृहस्थी चलाने के लिए यज्ञ-कार्य करने अर्थात् किसी प्रकार की खेती-बाड़ी अथवा शिल्पादि का कार्य करने के लिए आदेश है।

परमात्मा द्वारा दिए गये कच्चे धातु इत्यादि पदार्थों को उपयोगी पदार्थों में परिवर्तन करने के लिए प्रयत्न करने को कहा है।

हमने बताया है कि यज्ञ का अर्थ है ऐसे ढंग से परिश्रम करना, जिससे लोक-उपकारी पदार्थों का निर्माण हो। इस यज्ञ को जब कोई व्यक्ति नहीं करता, तो कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि। —यजु० २-२३

अर्थात्—(कः त्वा विमुञ्चति) कौन उसे (यज्ञ को) छोड़ता है। (सः त्वा विमुञ्चति) वह (परमात्मा) (त्वा) उस (यज्ञ न करनेवाले) को (विमुञ्चति) छोड़ देता है। (तस्मै त्वा विमुञ्चति) उसी के लिए वह उस (यज्ञ छोड़े हुए व्यक्ति) को छोड़ देता है।

(पोषाय रक्षसां भागोऽसि) (उस व्यक्ति के कार्य) दूसरे की रक्षा के लिए होने से वह (स्वयं भी दूसरों का) भाग हो जाता है।

पहले यज्ञ की महिमा का वर्णन कर उसके लिए साधन जुटाने के लिए कहा था। अब यह कहा है कि जो मनुष्य लोक-कल्याण के निमित्त अपने कार्य नहीं करता, परमात्मा उसे छोड़ देता है और उसके कार्य दूसरों के पालन के लिए हो जाते हैं। वह स्वयं भी उनका ही एक भाग हो जाता है अर्थात् वह स्वयं दूसरों की मण्डली में हो जाता है।

इसी प्रकार अध्याय के उपरान्त अध्याय में मनुष्य के व्यवहार की शिक्षा यजुर्वेद में दी गई है। संसार में रहने का प्रयोजन और उसमें रहने के विधि-विधान के विषय में भी कहा है। व्यक्ति के व्यवहार से आगे चलकर सामाजिक व्यवहार के विषय में भी वर्णन किया है। इस प्रसंग को आरम्भ करते हुए एक मंत्र है—

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा।
अपहताऽसुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः॥

—यजु० २-२९

अर्थ है—(अग्नये) अग्नि (ऊर्जा) प्राप्त करने के लिए। (कव्यवाहनाय) विद्वान् कार्यकुशल लोगों से कार्य लेने के लिए (स्वाहा) कल्याण के निमित्त। (सोमाय) सोम शक्ति को प्राप्त करने के निमित्त। (पितृमते) पितरों से सहयोग (स्वाहा) कल्याण हो।

(वेदिषदः असुराः रक्षांसि) पृथिवी पर घूमनेवाला असुर और राक्षस (दुष्ट व्यक्ति) (अपहताः) नाश होने योग्य है।

इसका अभिप्राय यह है कि संसार में अग्नि और सोम द्वारा कल्याण प्राप्त करने के लिए विद्वान् और कार्यकुशल लोगों तथा पितरों से सहयोग लो और दुष्ट तथा असुर लोगों को विनष्ट कर दो।

सामाजिक जीवन में यह प्रथम शिक्षा वेद ने दी है कि विद्वानों और पितरों के अनुकूल लोगों से शक्ति, अग्नि और सोम को प्राप्त करो और दुष्ट तथा असुरों को विनष्ट करो।

दुष्ट और असुरों में अन्तर समझ लेना चाहिए। दुष्ट का अभिप्राय होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दूषित व्यवहार करनेवाला है। जिसका क्रिया-कलाप अधर्मयुक्त हो। असुर का अभिप्राय है जो इन्द्रियों की तृप्ति के लिए जीवन चलाता है। एक असुर दुष्ट नहीं भी हो सकता। जो लोग परमात्मा और जीवात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते वे दूषित व्यवहारवाले नहीं भी हो सकते।

अपहता का अर्थ मार डालना नहीं भी हो सकता। किसी मनुष्य को, जो दूषित व्यवहार करता है उसे दूषित व्यवहार करने के अयोग्य बना देना भी 'अपहता' कहाएगा। वेदों ने असुरों की व्याख्या भी की है। कहा है—

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात्॥

—यजु० २-३०

अर्थात्—(ये) जो (रूपाणि) स्पष्ट दिखाई देनेवाले भावों को (प्रतिमुञ्चमानाः) छोड़कर उलटे भाव प्रकट करते हैं। वे (असुराः) असुर हैं। (स्वधया) प्रकृति से लिप्त हुए (चरन्ति) व्यवहार करते हैं।

(ये परापुरः निपुरः)जो लोक-व्यवहार से उलट और उसके अहित में (भरन्ति) व्यवहार करते हैं। (अग्निः) शक्ति। (तान्) उनको (अस्मात् लोकात्) समाज से (प्रणुदाति) निकाल दो।

अभिप्राय यह है कि इससे पूर्व के मन्त्र में जो दूषित चरित्रवालों और असुरों का वर्णन आया है, इस मन्त्र में उनमें से असुर के लक्षण किए हैं। कहा है कि जो लोक-व्यवहार से उलटा मार्ग स्वीकार करते हैं अथवा जो प्रत्यक्ष में उचित प्रतीत होता है उसको छोड़कर प्रकृति के गुणों में लिप्त होकर व्यवहार करते हैं, जो लोक-कल्याण के अतिरिक्त अथवा लोक-अहित में व्यवहार करते हैं, उनको समाज से निकाल दो।

यजुर्वेद में शिष्य, अध्यापक, योगाभ्यास इत्यादि के विषय में भी संक्षेप में लिखा है। व्यवसाय और उद्योग-धन्धों में व्यवहार के विषय में भी कहा है और संसार में रहते हुए किस प्रकार धन-धान्य सम्पन्न होवें, इसकी शिक्षा भी दी है।

और अन्त में उपसंहार के रूप में कहा है—

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

—यजु० ४०-१

अर्थात्—(यत् किम् इदम् सर्वम् जगत्यां जगत्) जो कुछ यह सब गतिशील जगत् है (ईशा वास्यमिदं) परमात्मा से आच्छादित [उससे निर्मित है], (तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः) त्याग के भाव से उसको भोगकर। (मा गृधः कस्य स्विद्धनम्) मत लोभ कर किसी के अपने धन का।

इस मन्त्र का अभिप्राय है कि यह जगत् परमात्मा से व्याप्त है। प्राकृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ मनुष्यकृत नहीं हैं। इस कारण उनका प्रयोग उतना ही कर जितना आवश्यक हो। उसमें भी त्याग के भाव से अर्थात् प्राकृतिक वस्तुओं को व्यर्थ में न गँवा। सब प्राकृतिक पदार्थ पृथिवी पर उत्पन्न प्राणिमात्र के लिए हैं। इस कारण उनको व्यर्थ मत गँवा। अन्य किसी के धन से, अभिप्राय यह है, प्राकृतिक पदार्थों से जिनको मनुष्य ने उपयोगी रूप देकर अपना बना लिया है, वह उसका हो गया है, उन पर लालच की दृष्टि न डाल।

मनुष्य का अपना क्या है? इस विषय पर भी इस मन्त्र में प्रकाश डाला गया है। क्योंकि प्रकृति के सब पदार्थ मनुष्यकृत नहीं हैं। वे सब परमात्मा से आच्छादित (निर्मित) हैं। वे किसी मनुष्य विशेष की सम्पत्ति नहीं। उनको आवश्यकता से अधिक मत ले।

परन्तु प्रकृति से मिलनेवाले प्रायः पदार्थ, जैसे प्रकृति में उपलब्ध होते हैं, प्रयोग में नहीं आते। उनको उपयोग के योग्य बनाने के लिए मनुष्य को परिश्रम करना पड़ता है। जो परिश्रम करता है वह उसके उपयोगी रूप का स्वामी बन जाता है। इस कारण जिसका वह धन है, उस पर लालच की दृष्टि मत डाल।

यह है अर्थ-शास्त्र का मूलमन्त्र।

वेद के इसी अन्तिम अध्याय में यह मन्त्र भी है—

विद्यां चाविद्यां यस्तद्वेदोभयँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ —यजु० ४०-१४

अर्थ है—(यः विद्याम् च अविद्याम्) जो मनुष्य विद्या और अविद्या को (च तत् उभयम् सह वेद) और उन दोनों को साथ-साथ जानता है।

(वह) (अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा) अविद्या को जानकर मृत्यु के भय को पार कर जाता है (और) (विद्यया अमृतम् अश्नुते) विद्या को जानने से वह अमृत (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

अभिप्राय यह है कि संसार के पूर्ण ज्ञान के विषय में बताकर वेद अन्त में यह कह रहा है कि दो प्रकार के ज्ञान उसने दिए हैं। एक अविद्या है। अविद्या का अभिप्राय है सदा (अविद्यमान —बनी न रहनेवाली वस्तुएँ) और विद्याम्—सदैव विद्यमान रहनेवाली वस्तुएँ। 'अविद्यमान' वेद हैं, जिनका अस्तित्व सदा नहीं रहता। इसमें जगत् के सब निर्मित पदार्थ आ जाते हैं। प्राकृतिक पदार्थों का ज्ञान, जो आजकल विज्ञान (Science) का विषय है, इसको जानकर मनुष्य इस संसार में निर्भय होकर विचरता है। उसे मृत्यु का भय नहीं रहता। वह इस भय को पार कर जाता है। और दूसरी है 'विद्याम्', उन वस्तुओं का ज्ञान जो सदा बनी रहती हैं। अर्थात् अनादि हैं। वे अनादि पदार्थ तीन हैं—परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। इनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने पर जीवात्मा पुनः मरण-जन्म के बन्धन में नहीं आता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर एक बात कही है—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्मर ।।

—यजु० ४०-१५

अर्थात्—(मरने पर) (वायुः अनिलम् अमृतम्) वायुः अग्नि और अमर जीवात्मा (पृथक्-पृथक् हो जाते हैं)। (अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम्) और यह शरीर भस्म हो जाता है। (इस कारण) (क्रतो स्मर) शरीर में जो कार्य करनेवाला है, उसके विषय में जानो। (वह जीवात्मा है)। (क्लिबे स्मर) शरीर में जो सामर्थ्य है, उसके विषय में जानो। (यह परमात्मा का दिया प्राण है)। (कृतं स्मर) अपने कर्मों का ज्ञान प्राप्त करो। (कर्मफल) जो मनुष्य को धकेलकर अपनी दिशा में ले जाते हैं, उनको जानो।

इस मन्त्र में यह कहा है कि अग्नि और वायु शक्ति के दो रूप हैं जिनसे इस संसार के कार्य चलते हैं। मरने के समय शरीर तो भस्म हो जाता है और इसमें जो दो प्रकार की शक्तियाँ हैं, वायु अन्तरिक्ष की वायु में और अग्नि अग्नि में मिलकर एकमय हो जाती हैं। मनुष्य शरीर में दोनों शक्तियाँ काम कर रही होती हैं। वायु प्राण के रूप में कार्य करता है। शरीर की गतियाँ इससे ही सम्पन्न होती हैं। वैसे वायु पाँच प्रकार की होती है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

हमने बताया है कि पाँच प्रकार से वायु शरीर में कार्य करती है और वायु एक शक्ति है। इस कारण वह शक्ति जिससे शरीर में गतियाँ पैदा होती हैं, वायु कहाती हैं।

एक गति है जिससे हम साँस भीतर ले जाते हैं और फिर साँस बाहर निकालते हैं। यह फेफड़ों के फैलने और सिकुड़ने से होता है। अतः जो शक्ति फेफड़ों को फैलाती है और सिकोड़ती है, वह प्राण है।

दूसरी वायु अपान है। इससे शरीर में ऊपर की ओर होनेवाली गतियाँ सम्पन्न होती हैं। जैसे डकार आदि का आना। समान उस वायु को कहते हैं जो नाभि में स्थित होती है।

उदान नीचे को गति देनेवाली वायु को कहते हैं। इससे मल-मूत्र का निष्कासन होता है।

व्यान उस वायु को कहते हैं जिससे रक्त आदि की गति होती है।

ये सब प्राण ही हैं।

अग्नि उस शक्ति को कहते हैं जिससे भोजन पचता है और शरीर के अंग बनते हैं। दूसरे शब्दों में, शरीर में होनेवाली रासायनिक क्रियाओं को करनेवाली शक्ति अग्नि कहाती है।

यजुर्वेद में यह मन्त्र है जो शिक्षा का चरम समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

कल्प—१

ब्रह्मदिन और ब्रह्मरात्रि को कल्प कहते हैं। इस जगत् में, परमाणु की साम्यावस्था भंग होने से लेकर जगत् के पूर्ण होने तक और फिर विघटन द्वारा अन्त में पुनः परमाणु की साम्यावस्था बनने तक का पूर्ण क्रिया-कलाप कल्प कहाता है।

यह एक अति विस्तृत विषय है। इसमें सृष्टि किस प्रकार निर्मित हुई और किस प्रकार यह लाखों वर्ष से चल रही है तथा किस प्रकार से विघटित होती हुई यह अन्त में प्रकृति के अव्यक्त रूप में लय हो जाएगी, इन सबका वर्णन है।

हमारा विचार है कि वेद का अधिकांश भाग कल्प ही है। उसमें अध्यात्म के विषय में बहुत न्यून भाग है। यद्यपि अध्यात्म का विषय भी कल्प के अन्तर्गत है, परन्तु यह कल्प को भी पार कर जाता प्रतीत होता है।

अध्यात्म में तीन अनादि पदार्थ कहे हैं। परमात्मा, प्रकृति और जीवात्मा। परमात्मा एक है। प्रकृति भी एक ही है परन्तु यह कणों (परमाणु समान टुकड़ों) में विभक्त है। जीवात्मा असंख्य हैं। जब प्रकृति लय की अवस्था में हो जाती है तब भी तो प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा रहते हैं। किस अवस्था में और कहाँ रहते हैं, यह विषय भी कल्प के अन्तर्गत है।

इतने विस्तृत विषय का वर्णन हम इस छोटी-सी पुस्तक में नहीं कर सकते। न ही यहाँ स्थान है और निश्चय ही यह हमारी सामर्थ्य में भी नहीं है कि हम इसका पूर्ण ज्ञान दे सकें।

इस विषय को समझाने के लिए हम दर्शनशास्त्रों का सहारा लेंगे। हमने ऊपर बताया है कि दर्शनशास्त्र वेद को युक्ति से समझाने के लिए कहे गये हैं और कल्प के विषय में तीन दर्शनशास्त्र अपनी पूर्ण सामर्थ्य से प्रकाश डालते हैं और चौथे दर्शन शास्त्र में भी इस कल्प के विषय को सुलझाने का प्रयास किया गया है।

तीन शास्त्र हैं ब्रह्मसूत्र (उत्तर-मीमांसा), सांख्य दर्शन और वैशेषिक दर्शन। इन तीन दर्शनों में कल्प के विषय का वर्णन है। चौथा शास्त्र अर्थात् पूर्व-मीमांसा कल्प में मनुष्य के व्यवहार का वर्णन करता है। यद्यपि विषय सीमित है, फिर भी है कल्प काल में व्यवहार का ही।

इस एक विषय का निरूपण करने में चार दर्शनशास्त्रों का प्रयत्न, इस विषय की महानता और विशेषता का सूचक है।

विषय का निरूपण हम ब्रह्म से ही आरम्भ करते हैं।

(१) ब्रह्म—ब्रह्म शब्द का अर्थ है बहुत बड़ा, अति महिमायुक्त, महान् और अपने में अनिवार्यता का गुण रखनेवाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषदों में कई पदार्थों को ब्रह्म कहा है। वेद, सूर्य, जगत्, वाणी आदि को ब्रह्म के नाम से स्मरण किया है। फिर भी तीन अनादि पदार्थों को निर्विवाद रूप से ब्रह्म कहनेवाला श्वेताश्वतर उपनिषद् है। वहाँ कहा है—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः॥

—श्वे० १-६, ७

अर्थ है—सब जीव उस बड़े (जगत् रूपी) चक्र में स्थित हैं। यहाँ जीव से अभिप्राय प्राणी है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीवात्मा का संयोग प्राणी है। जीवात्मा (इससे यही अभिप्राय है) इस ब्रह्म-चक्र में भ्रम में फँसा हुआ है। इस जगत् को ब्रह्म-चक्र कहा है। इस (ब्रह्मचक्र-प्राणी और जीवात्मा) से पृथक् एक अन्य आत्मतत्त्व है। जीवात्मा यदि उसे प्रेरक मान उसमें लीन हो जाता है तो वह मरण-जन्म से मुक्त हो जाता है (ऐसा जीव ब्रह्मलीन कहाता है।)

आगे कहा है—ऊपर जो कहा है कि परमब्रह्म (ब्रह्मचक्र) है जिसमें तीन अक्षर प्रतिष्ठित हैं। ये तीन अक्षर हैं मूल प्रकृति, जीवात्मा और प्रेरणा देनेवाला परमात्मा। इस (ब्रह्मचक्र अथवा परमब्रह्म) में ही, ब्रह्म को जाननेवाले कहते हैं कि ब्रह्म में लीन (युक्त) जीव भी विचरते हैं।

इन दो मन्त्रों में जगत् को ब्रह्मचक्र कहा है। साथ ही कह दिया है कि इस ब्रह्मचक्र में चार पदार्थ हैं। परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति और ब्रह्मलीन जीव।

आगे इसी उपनिषद् में कहा है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृ भोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥
एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥

—श्वे० १-९,१२

ज्ञानवान और अज्ञानी दोनों अजन्मा (अनादि) हैं। ज्ञानवान शक्तिमय और अज्ञानी दुर्बल है। एक अन्य अजन्मा (अनादि) पदार्थ है जो भोग करनेवाले के लिए भोग का पदार्थ प्रस्तुत करता है।

इस रूपोंवाले जगत् में स्थित अनन्त आत्मा है। जब ये तीनों जाने जाएँ तो यह ब्रह्म का ज्ञान होता है।

अपने भीतर में सदा स्थित उस (परम तत्त्व देव) के परे अन्य कुछ भी जानने योग्य नहीं। भोक्ता, भोग्य और प्रेरणा देनेवाला, जानो कि यह सब तीन प्रकार का ब्रह्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मन्त्रों में यह कहा है कि इस पूर्ण जगत् के मूल तत्त्व तीन ही हैं। जीवात्मा जो भोग करता है, प्रकृति जो भोग में प्रयुक्त होती है और परमात्मा जो प्रेरणा देनेवाला कहा जाता है, ये तीनों ब्रह्म हैं।

इन तीनों को अनादि तत्त्व माना है।

इस उपनिषद्कार ने जो विशेष बात कही है, वह ब्रह्म के विषय में है। परम ब्रह्म यह पूर्ण संसार और संसार से भी ऊपर जो कुछ है, वह सब है और उस परम ब्रह्म में तीन अनादि पदार्थ हैं। परमात्मा जो प्रेरणा देनेवाला है और जीवात्मा जो भोग की लालसा रखता है तथा मूल प्रकृति जो भोग की सामग्री उपस्थित करती है।

इसको वेद में एक अन्य ढंग से कहा है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।।

—ऋ० १-१६४-२०

(द्वा सुपर्णा सयुजा) दो सुन्दर पंखों (गतियों) वाले, साथ-साथ सम्बन्ध और सखाभाव रखनेवाले (समानं वृक्षम् परि षस्वजात) एक ही वृक्ष पर समान रूप से आश्रय पाये हुए हैं। (तयोः अन्यः) उन दोनों में से एक (पिप्पलं स्वादु अत्ति) उस वृक्ष के पके फलों को स्वाद से खाता है। (अन्यः अनश्वत्) दूसरा न खाता हुआ, (अभि चाकशीति) सब ओर से देखता है।

यह है कल्प मूल।

वेद के एक उपांग ब्रह्मसूत्र में यही बात युक्ति से स्पष्ट की है। वहाँ कहा है—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्।
विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ।।
अनुपपत्तेस्तु न शारीरः।
कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ।। —ब्र० सू० १-२-१,२,३,४

जो सब स्थान और काल में प्रसिद्ध है (जगत्या जगत् यजु० ४०-१) उसके कहे गये गुणों के ज्ञान से (सूर्य, चन्द्र, तारागणों इत्यादि को देखकर यह पता चलता है कि) शरीर के गुण उसमें नहीं। जीवधारी और सूर्य चन्द्रादि के गुणों में अन्तर है? क्या अन्तर है? कर्म और उसके करनेवाला होने से।

इन तीन सूत्रों का अभिप्राय यह है कि इस गतिशील जगत् को, जो हम नित्य देखते और जानते हैं, देखने से यह विदित होता है कि शरीरी अर्थात् जीवधारी का गुण जगत् के सब पदार्थों में नहीं है। शरीरधारी अर्थात् जीव में कर्म करने का गुण है। यह कर्म करता है अपनी इच्छा से। न इच्छा हो तो कर्म नहीं करता। परन्तु सूर्य चन्द्रादि ऐसा नहीं कर सकते। अतएव इस संसार में शरीरधावी (जीव) संसार से विलक्षण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके उपरान्त कहा है कि जगत् के सब पदार्थ गति कर रहे हैं और हम जानते हैं कि ये सब सीधी रेखा में गति नहीं करते। इस कारण इनको गति देनेवाला और गति पर प्रभाव उत्पन्न करनेवाला कोई होना चाहिए।

वैज्ञानिक न्यूटन ने यह सिद्धान्त निश्चय किया था कि प्रकृति का कोई कण भी ठहरी हुई अवस्था से अपने आप चल नहीं सकता और जब चल रहा होता है तो वह अपनी गति की दिशा को बदल नहीं सकता, जब तक कि कोई बाहरी शक्ति उस पर प्रभाव न डाले।[१]

इस कारण ब्रह्मसूत्र रचयिता कहता है—

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ।।

—ब्र० सू० १-२-७

अर्थात्—(अर्भकौकस्त्वात्) शरीरों में छोटे से स्थान पर होनेवाला भी (तत् उपदेशात्) वैसा कहे जाने पर भी। (न इति) नहीं है। (चेत् न निचायत्वात् एवम्) यदि कहो तो निश्चय होने से (व्योमवत् च) व्योमवत् है।

शरीर अर्थात् प्राणी कार्य करता है। वैसे ही जैसे चन्द्र, बृहस्पति तथा अन्य तारागण चलते हैं। क्या इनके चलानेवाला छोटे से शरीर में है? सूत्रकार कहता कि नहीं है। अन्य कारणों से हम जान चुके हैं कि जो चन्द्र, तारागण इत्यादि को चलाता है, वह एक सर्वव्यापक तत्त्व है। जहाँ-जहाँ तक व्योम है वहाँ-वहाँ तक वह विद्यमान है।

ब्रह्मसूत्र का एक सूत्र है—

तत्तु समन्वयात्। —ब्र० सू० १-१-४

अर्थात्—(तत्) वह (तु) इस कारण। (समन्वयात्) (जगत् के कार्यों में) समन्वय से होने के कारण (यह सिद्ध होता है कि इस पूर्ण संसार का संचालन करनेवाला कोई एक है।)

यहाँ कहा है कि वह शरीरी में और अशरीरी में गति उत्पन्न करनेवाला एक सर्वव्यापक तत्त्व है।

परन्तु ब्रह्मसूत्र यह कह चुका है कि शरीरी के गुण जगत् के अन्य पदार्थों में नहीं पाए जाते।

उदाहरण के रूप में मनुष्य एक प्रातः भ्रमण के लिए इण्डिया गेट की ओर जा

---

१. Every particle of matter continues in the state of rest or motion with constant speed in a straight line unless compelled by a force to change that state.—Newton, lst law of motion.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है। अगले दिन उसकी इच्छा नदी के तट पर भ्रमण को जाने की होती है। तीसरे दिन वह किसी अन्य दिशा को चल पड़ता है। एक अन्य दिन वह चिड़िया-घर देखने जा सकता है।

यह व्यवहार सूर्यादि नक्षत्रों का नहीं देखा जाता। वे नियम से एक ही दिशा में नियत समय पर उदय होते हैं और अस्त होते हैं।

इसी कारण कहा है कि शरीरी के गुण वे नहीं, जो जगत् के दूसरे गतिशील पदार्थों के हैं।

इस कारण दर्शनाचार्य कहता है—

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ ब्र० सू० १-२-११

अर्थात्—(गुहां) गुहा [मस्तिष्क में एक छोटे से स्थान में] (प्रविष्टौ आत्मानौ) आत्म तत्त्व प्रविष्ट (हि) निश्चय से हैं। (तत् दर्शनात्) उनके दर्शन से।

प्राणी के मस्तिष्क में एक गुहा अर्थात् छोटे से स्थान पर दो आत्म-तत्त्व रहते हैं। आत्म-तत्त्व से अभिप्राय है चेतन तत्त्व। ये दो हैं। कारण यह कि दो प्रकार की चेष्टाएँ प्राणी में होती हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि की भाँति भी चेष्टा होती देखी जाती है। हम भोजन लेते हैं और फिर सो जाते हैं। भोजन को पचाने और उसे आगे शरीर के अंग-प्रत्यंग में ले जाने का कार्य, बिना प्राणी की इच्छा के होता रहेगा। परन्तु कुछ अन्य चेष्टाएँ भी होती हैं जो प्राणी के दूसरे चेतन तत्त्व के अधीन होती हैं। जैसे हम किसी शत्रु पर प्रहार करना चाहते हैं अथवा किसी प्रिय-जन को नमस्कार करना चाहते हैं, हमारी इच्छानुसार हमारे हाथ कार्य करेंगे। शत्रु पर प्रहार करेंगे अथवा प्रियजन को नमस्कार करेंगे।

अतः, सूत्रकार का कहना है कि प्राणी (शरीरी) में दो आत्म तत्त्व हैं। एक जो सर्वव्यापक है और दूसरा जो केवल शरीर के साथ सम्बन्ध रखता है।

सर्वव्यापक तत्त्व को परमात्मा कहते हैं और जो शरीर-शरीर में भिन्न-भिन्न हैं, वे जीवात्मा कहाते हैं।

एक मनुष्य किसी घटना से प्रसन्नता अनुभव करता है। उसी घटना से दूसरे को अप्रसन्नता अनुभव होती है। इससे सिद्ध होता है कि जीवात्मा प्राणी-प्राणी में पृथक्-पृथक् हैं, परन्तु परमात्मा सबमें एक है।

यही बात एक वेद-मन्त्र में भी कही गयी है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥

—ऋ० १-१६४-१

इस मन्त्र का अर्थ है—(अस्य वामस्य पलितस्य) इस सुन्दर (परन्तु) बूढ़ा हो जानेवाले का (तस्य होतुः भ्राता मध्यमा अस्त्यश्नः) बीच में बैठा उसका भाई यज्ञ (कर्म) करता है और भोग करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तृतीयो भ्राता घृतपृष्टो विश्पति) तीसरे भाई को, पालन करते हुए तथा रक्षा करते हुए (अपश्यं सप्त पुत्रम्) सात पुत्रों के साथ मैं देखता हूँ।

यह कहा है कि संसार में सुन्दर और घिस जानेवाला कुछ है और उसमें एक भाई बैठा है, जो शरीर यज्ञ का करनेवाला और संसार का भोग करनेवाला है। तीसरा भाई उसका पालन करता है। शब्द 'घृतपृष्ठः' है। अर्थ है पीठ पर घी सिंचन करनेवाला। जैसे आज के युग में मशीन को चलते रहने के लिए तेल देना पड़ता है, इसी प्रकार वह घृतपृष्ट करनेवाला कहा जा सकता है। परमात्मा संसार की मशीनरी को स्निग्ध करके चालू रखता है। परन्तु भाई तो केवल प्राणियों के अन्दर ही होता है। यह तीसरा भाई अपने सात पुत्रों के साथ सब प्राणियों के भीतर रहता है।

ऋग्वेद के इसी भाव को दूसरे मन्त्र में भी कहा है—

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥

—ऋ० १-१६४-२

अर्थात्—(यत्र इमा विश्वा भुवना अधि तस्थुः) जहाँ इस (संसार में) सब भुवन नक्षत्र ठहरे हुए हैं और (त्रिनाभि चक्रम अजरम् अनर्वम्) तीन नाभियोंवाला है और बिना घोड़ों के चल रहा है। (रथम् एक चक्रम् एकः अश्वः वहति सप्तनामा सप्त युञ्जन्ति) एक चक्र को जिसमें सप्तनाम वाले सात जोड़ हैं, उसे एक ही अश्व हाँकता हुआ ले जा रहा है।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् एक चक्र की भाँति अपने केन्द्र पर घूम रहा है। सब नक्षत्र उस चक्र में टिके हैं। चक्र की तीन नाभियाँ हैं और सात नामवाले जोड़ हैं।

यहाँ यह बता देना ठीक होगा कि जगत्, जिसमें हमारा सौर-मण्डल है, एक बहुत बड़ी तश्तरी की भाँति का चक्र और यह अपने केन्द्र पर एक चक्र की भाँति घूम रहा है। जगत् को वर्तमान वैज्ञानिक 'गैलेक्सी' जिसे हम आकाश गंगा कहते हैं, एक तश्तरी की भाँति घूमता हुआ चक्र मानते हैं।

इस आकाश गंगा में सात सूर्य माने जाते हैं और उनके अपने-अपने सौर-मण्डल हैं। इस चक्र की तीन नाभियाँ हैं। इसका अर्थ है कि चक्र में तीन चक्र हैं और घूमनेवाले भी नक्षत्र हैं। इन तीन नाभियों की बात वर्तमान ज्योतिष-विद्या नहीं मानती।

इसमें दूसरे भ्राता का नाम नहीं लिया। एक ही अश्व इसे घूमता हुआ माना है। वह अश्व परमात्मा का तेज है। किसी भुवन अथवा नक्षत्र में दूसरे भ्राता जीवात्मा का कथन नहीं है।

हमने बताया है कि परमाणुओं पर तेज के प्रभाव से परमाणुओं की साम्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्था भंग हुई और परमाणुओं में परस्पर आकर्षण-विकर्षण उत्पन्न हुआ तो परमाणु-समूह बनने लगे।

सांख्य दर्शन इसका वर्णन इस प्रकार करता है :—

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः
प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात्
पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः
स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥

—सां० १-६१

सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ और दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ और तन्मात्राओं से स्थूल महाभूत बनते हैं।[1]

स्थूल महाभूतों से ही यह चराचर जगत् बना है और इन्द्रियों के संयोग से शरीर और प्राणी का निर्माण हुआ है।

सांख्य दर्शन का यह कथन मूलरूप में वेद में भी है। ऋग्वेद में कहा है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामृगभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानी मा शफानां सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥

—ऋ० १-१६३-१,२,३,४,५

मन्त्रार्थ हैं—(श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातम्) बाज के पंखों और हिरण की बाँहों (के समान तीव्रगति से चलनेवाला) (प्रथमं जायमान उद्यन् समुद्रात् उत वा पुरीषात् यत् अक्रन्दः ते अर्वन्) अर्वन जो बहुत शब्द करता हुआ पैदा होता हुआ ऊपर अन्तरिक्ष में सब कार्य पूर्ण करने के लिए उठा।

(यह अर्वन्) (यमेन) परमात्मा द्वारा। (दत्तं) दिया हुआ। (त्रितः एनम् आयुनक् इन्द्रः एनम् प्रथमः अधितिष्ठत्) यह अर्वन्, त्रित ने लगामों की भाँति ग्रहण

---

१. इस विषय की विशद् विवेचना लेखक की कृति 'सृष्टि-रचना' में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया और इन्द्र से अधिकृत हो गया। त्रित का अभिप्राय त्रिगुणात्मक परमाणु है।

(अस्य गन्धर्वः सूरात् रशनाम् अगृभ्णात् अश्वं वसवः निरतष्ट) सूर्य की किरणों की भाँति त्रित (त्रिगुणात्मक परमाणु) ने (अर्वन) ग्रहण किया और थामा।

(असि यमः) तू यमन करनेवाला (त्रित को नियंत्रण में रखनेवाला) है। (असि आदित्यः) तू प्रकाशस्वरूप है। (अर्वन् असि) तू अर्वन् (तेज माँगनेवाला) है। (त्रिता गुह्येन व्रतेन) परमाणु गुप्त रूप से गठित होने से (असि सोमेन समया) साम्यावस्था में समीप-समीप थे। (विपृक्त) पृथक्-पृथक् थे। (आहुः ते त्रीणि दिवि बन्धनानि) यह कहा जाता है कि तीन दिव्य संगठनों में बँध गये।

(त्रीणि ते आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीणि अस्य) वे तीन बन्धन दिव्य गुणवाले हैं। ये तीन अपाः (अहंकार) कहे जाते हैं। (त्रीणि अन्तः समुद्रे) तीनों (अपः) अन्तरिक्ष में (उत इव में वरुणे छन्ति) ऊर्जा से (यत्र अर्वन् ते आहु परमं जनित्रम्) जहाँ अर्वन् से कहा जाता है यह परम ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ।

(इमा ते वाजिन् अवमार्जनानि) तब इस अश्व (अर्वन्) से जगत् के पदार्थों का शोधन हुआ। (मा शफानां सनितुः निधानाः) इससे कल्याणकारी शुद्ध पदार्थ बने। (अत्र ते भद्रा रशना अपश्यम्) यहाँ वह सुखकारक (पदार्थ को) देखूँ। (या ऋतस्य अभिरक्षन्ति गोपाः) जो ईश्वरीय नियम से परमात्मा द्वारा रक्षा पालन करते हैं।

Central Library Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar 167965

अभिप्राय यह है कि परमात्मा का तेज अति वेग उत्पन्न करता हुआ उत्पन्न हुआ और अति वेग से अन्तरिक्ष में फैल गया। वह सब कामना पूर्ण करनेवाला था। इस तेज को अर्वन् का नाम दिया है। यह परमात्मा का तेज त्रित अर्थात् प्रकृति के त्रिगुणात्मक परमाणु से लगामों की भाँति स्वीकार किया गया। यह सूर्य की रश्मियों के समान उन त्रितों (परमाणुओं) पर अधिष्ठित हो गया। ये त्रित छुपी हुई शक्ति से बहुत दृढ़ता से गठित था। यह उसकी साम्यावस्था थी। अर्वन् ने उसको असाम्यावस्था में कर दिया। एक शब्द है विपृक्तः। इसका अर्थ है अपने स्वरूप से बदल दिया। ऐसा होने से तीन दिव्य गुणवाले बन्धन (आपः) बने। यह तीन अहंकारों से बनने का वर्णन है। इन्हें ही वर्तमान विज्ञान में ऐटम के तीन कण— इलैक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन कहते हैं। इन्हें वैदिक भाषा में आपः कहा है। ये दिव्य शक्तिवाले हैं।

इन तीन दिव्य शक्तिवालों से यह परम ब्रह्माण्ड बना है। ये आपः अश्व कहे हैं क्योंकि यह रचना-कार्य को आगे चलाते हैं। इनसे विश्व के सब पदार्थ शुद्ध (ठीक-ठीक) बने और ठीक योग बनकर कल्याण करनेवाले हुए। हम इनसे अपने सुख और स्वाद को प्राप्त करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

कल्प—२

जब रचना चलने लगी तो पृथिवी ठण्डी हुई और ठण्डी होने पर जल से ढप गयी। तब इन्द्र, वरुण और मरुतादि देवताओं की सहायता से पृथिवी के जल का शोषण किया गया। बड़े-बड़े वराह (बादल) बने और उनसे पृथिवी का जल अन्तरिक्ष में चला गया। पृथिवी पर भूमि जल से बाहर आ गयी। जब भूमि रहने लायक हुई तो यहाँ प्राणी-सृष्टि हुई और मनुष्य ने अपने बुद्धि-बल से प्राकृतिक पदार्थों को अपने उपयोग के योग्य बनाया।

ईश्वरीय सिद्धान्त तो अटल है परन्तु उसका प्रयोग मनुष्य अपनी बुद्धि से करता है। इस प्रयोग में ही मनुष्य स्व और पर के भेद में पड़कर धर्म और अधर्म में फँस जाता है।

हम बता चुके हैं कि वेद मनुष्य को शिक्षा देता है और जो इस शिक्षा के अनुसार कर्म करता है वह कल्याण का भागी होता है।

कर्म करने के विषय में भी वेद ने मार्गदर्शन किया है। यजुर्वेद का एक मंत्र है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

—यजु० ४०-२

अर्थ है—(इह कर्माणि कुर्वन् एव जिजीविषेत्) इस संसार में कर्मों को करते हुए ही जीने की इच्छा करो। (शतं समाः) सौ वर्ष तक। (एवं न अन्यथा अस्ति न कर्म लिप्यते नरे) इससे दूसरा कोई मार्ग नहीं। इस कारण कर्मों में लिप्त (मोह-ग्रस्त) न हो।

इसका अभिप्राय यह है कि इस संसार में कर्म किए बिना रहा नहीं जायेगा। सौ वर्ष तक मनुष्य-जीवन की अवधि है। अतः कर्म तो करे परन्तु कर्मों में लिप्त न हो।

कर्मों में लिप्त न होने का अभिप्राय यह है कि कर्मफल की इच्छा को छोड़कर कर्म करे। इसे ही भगवद्गीता में निष्कामकर्म का नाम दिया है।

मनुष्य प्राकृतिक पदार्थों को ले। उनको मानवोपयोगी रूप दे परन्तु ललचाई दृष्टि से भोग न करे। अर्थात् उनका उतना ही भोग करे जितना जीवन के लिए अनिवार्य है।

वेद ने यह क्यों कहा है? क्योंकि मनुष्य (जीवात्मा) उन प्राकृतिक वस्तुओं के निर्माण में कुछ भी योगदान नहीं देता। यह वस्तु अर्थात् प्राकृतिक पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा के ही निर्माण किये हुए हैं और मनुष्य को प्रयोग के लिए मिले हैं। इसलिए सब मनुष्यों का विचार कर, उनका उतना ही भोग करे, जितना उसके भाग में हो।

यदि वह ऐसा करेगा तो क्या होगा ? इस विषय में शास्त्र कहता है—

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥
न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ॥
शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥

—ब्र० सू० १-२-१८, १९, २०

अर्थात्—(अन्तर्यामी) भीतर से नियंत्रण करनेवाला (अधिदैवादिषु) अधिदेवादि अर्थात् भौतिक शरीरों में है। (तत् धर्म व्यपदेशात्) उसके धर्मों के बताये जाने से।

(न च स्मार्तम्) और वह स्मृति यंत्र मस्तिष्क नहीं है (अतत् धर्माभिलापात्) उसके धर्मों के ज्ञान से यही पता चलता है।

(शरीरः च उभये अपि) और शरीरः अर्थात् जीवात्मा तथा मस्तिष्क दोनों भी नहीं। (भेदेन एनम् अधीयते) इनके भेद को जानने से।

इन सूत्रों का अभिप्राय यह है कि शरीर में कार्य करने की शक्ति परमात्मा की है, शरीर की नहीं !

यह मस्तिष्क (मन और बुद्धि) भी नहीं, जो कार्य करते हैं। जीवात्मा और मस्तिष्क दोनों ही नहीं।

सूत्रकार का कहना है कि शरीर में कार्य करने की शक्ति परमात्मा की है। इसे प्राण कहते हैं। वेद में इसको परमात्मा के सात पुत्र कहा है।

—ऋ० १-१६४-१

प्रश्न उत्पन्न होता है कि जीवात्मा इसके काम करने में उत्तरदायी क्यों है और परमात्मा क्यों नहीं ?

इस विषय में सूत्रकार व्यास मुनि कहता है—

गतिशब्दाभ्यां तथा दृष्टं लिंग च ॥
धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ॥
इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासंभवात् ॥

—ब्र० सू० १.३.१५,१६,१८

अर्थात्—(गतिशब्दाभ्यां) वाकादि इन्द्रियों की गति से (कार्य से) (तथा द्रष्टं लिंग च) और लिंग अर्थात् चिह्न दिखाई देता है (परमात्मा का)।

(अस्य धृतेः च) और इसको धारण करता है। (महिम्नः) यह इसका महिमायुक्त कार्य है। (अस्मिन् उपलब्धेः) इस शरीर में पाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इतरपरामर्शात्) अपने से छोटे (जीवात्मा) के परामर्श से (इति) यह है। (चेत् न असम्भवात्) यह कहो तो असम्भव नहीं।

इन सूत्रों का अभिप्राय यह है कि शरीर की इन्द्रियों के कार्य परमात्मा की शक्ति से होते हैं और परमात्मा शरीर को धारण करता है। ये दोनों कार्य परमात्मा के अति महिमायुक्त हैं। ये कार्य करने की शक्ति परमात्मा इतर् (कम सामर्थ्यवान्) जीवात्मा को अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए दे देता है।

जीवात्मा परमात्मा की इस प्राण-शक्ति का प्रयोग अपनी इच्छा से करता है। और यदि इस शक्ति का प्रयोग वह अच्छे कार्यों में करता है तो वह उन्नति करता है और यदि बुरे कार्यों में करता है तो वह अवनति करता है। उन्नति का अभिप्राय है उसको श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर जन्म मिलता है। मनुष्य योनि में भी कई स्तर होते हैं और यह भी माना जाता है कि मनुष्य योनि से भी ऊपर की योनियाँ हैं। महाभारत में लिखा है कि ऋषिगण सूर्य रश्मियों पर ऐसे स्थित होते हैं जैसे वृक्ष की शाखाओं पर बैठे पक्षी और वे सूर्य-रश्मियों की गति से इस संसार में विचरते हैं।

—महाभारत १२-३६२-३

ऐसी योनि को और फिर उससे मोक्षावस्था को प्राप्त करने के लिए परमात्मा की दी हुई प्राण-शक्ति का उचित प्रयोग करे तभी यह सम्भव हो सकता है।

ब्रह्मसूत्र में लिखा है—

उत्क्रमिष्यत एवं भावादित्यौडुलोमिः ॥
अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ॥
प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॥

—ब्र० सू० १-४-११, २२, २३

अर्थात्—(इति औडुलोमिः) यह ऋषि औडुलोमि का मत है। (एवं भावात् उत्क्रमिष्यत) ऐसा होने से मनुष्य उन्नति करता है।

(इति) इस प्राण से (अवस्थितेः) संचालित होने से। (काशकृत्स्नः) यह काशकृत्स्न ऋषि का मत है।

(प्रकृतिः च) और प्रकृति शरीर के भोग में बाधक है। (प्रतिज्ञा दृष्टान्त अन् उपरोधात्) प्रतिज्ञा (दृढ़ निश्चय) और शास्त्र ज्ञान की प्रेरणा न होने से।

इन सूत्रों का अभिप्राय यह है कि मनुष्य परमात्मा के प्राण का प्रयोग करता हुआ जब भले कर्म करता है तो उन्नति अर्थात् श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर योनियों को प्राप्त करता जाता है।

शरीर की कामनाएँ इस उत्क्रमण में बाधा डालती हैं। यह बाधा तब ही होती है जब जीवात्मा में दृढ़ संकल्प और शास्त्र ज्ञान का अभाव हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ४ :

ज्योतिष

हमने पुस्तक के इस द्वितीय खण्ड में शिक्षा और कल्प के विषय में लिखा है। अब वेद के तृतीय अंग ज्योतिष के विषय में लिखना चाहते हैं।

ज्योतिष से अभिप्राय है अन्तरिक्ष में नक्षत्रादि का ज्ञान।

आचार्य भास्कर वेद और ज्योतिष का सम्बन्ध इस प्रकार वर्णन करते हैं—

वेद चक्षुः विलेदं स्नृतं ज्योतिषं···

ज्योतिष वेद का चक्षु स्थानीय है। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे मनुष्य चक्षु से अपने से दूर के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है, इसी प्रकार वेद-ज्ञान को देखने के लिए ज्योतिष चक्षु अर्थात् आँखों का काम करता है।

अर्थात् सृष्टि-रचना, पालन और लय का तिथिकाल बतानेवाला शास्त्र ज्योतिष है।

विद्वान् लोग नक्षत्रादि को देखकर ही इस बात का ज्ञान प्राप्त कर सके हैं कि यह रचना कब हुई और कब तक रहेगी तथा इस रचनाओं और पालन कार्य में क्या-क्या परिवर्तन आये हैं।

यह इस पुस्तक में नहीं बताया जा सकता कि अन्तरिक्ष में क्या-क्या देखकर विद्वानों ने सृष्टि-रचना के विषय में क्या-क्या गणनाएँ की हैं। हाँ, वेद में इस विषय में जो कुछ कहा है, उसकी एक झलक मात्र ही यहाँ बतायी जा सकती है।

हम प्रथम खण्ड में बता आये हैं कि वेद इस प्रपंच की अवधि—३,३२,००,००,००० सौर वर्ष मानते हैं और वेद में इस काल को १००० भागों में बाँटा है।

इस विषय में हम प्रथम खण्ड में लिख चुके हैं। यहाँ इतना बताने से ही अभिप्राय है कि वेद में इस ज्योतिष का मूल रूप में वर्णन है। परन्तु वर्तमान युग में प्रचलित फलित ज्योतिष का वेद में वर्णन नहीं है। न ही सूर्य, चन्द्रादि ग्रह पृथ्वी पर और फिर पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्यों पर क्या प्रभाव डालते हैं और किस प्रकार प्रभाव डालते हैं, इसका वर्णन वेद में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ५ :

व्याकरण, निरुक्त और छन्द

ये विद्याएँ वैदिक भाषा का अर्थ और वेद विषय को समझने के लिए हैं। व्याकरण, निरुक्त इत्यादि के विषय में यास्क ने विस्तार से और उदाहरणोंसहित लिखा है। परन्तु यहाँ संक्षेप में ही इनके विषय में लिखना सम्भव है।

व्याकरण, निरुक्त और छन्द को 'शब्द शास्त्र' कहा है। इन तीनों की सहायता से वेदार्थ करने में सुविधा होती है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि भाषा पहले बनी और इसका 'शब्द शास्त्र' बाद में बना। यही कारण है कि शब्द शास्त्र वेद वाणी के पीछे-पीछे चलता है न कि वेदवाणी शब्द शास्त्र के पीछे-पीछे चलती है। यास्क ने कहा है—

तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारो समर्थौ प्रादेशिकेन विकारेणान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात्। —निरुक्त २-१

अर्थात्—जिन-जिन पदों में स्वर और संस्कार(प्रत्यय, विभक्ति आदि)समर्थ हों (अर्थ बता सकें), (शब्द) विकार (परिवर्तनों) के नियमों से अर्थ का समर्थन होता हो तो वहाँ वैसा ही अर्थ करना चाहिए। (ऐसी स्थिति में अर्थ और विवेचन समान होगा)।

अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत। केनचिद् वृत्तिसामान्येन अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयात्।

अर्थात्—और अर्थ संगत होने पर व्याकरण की प्रक्रिया से भी अर्थ नहीं बनें तो अर्थ(भाव) की नित्यता पर विचार कर किसी भी वृत्ति (व्यवहार) की समानता से परीक्षा कर ले। (शब्द में धातु की समानता से अर्थ करे)। जहाँ (धातु आदि की) समानता न हो वहाँ अक्षर अथवा वर्ण की समानता में, स्वर-व्यंजन की समानता से निर्वचन (भाव ज्ञान)कर ले। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मंत्र के विषय (देवता) का वर्णन छोड़कर कुछ का कुछ कहने लगे।

निर्वचन (भाव प्रकट) करते समय यह आवश्यक है कि देवता से निर्दिष्ट विषय का वर्णन न छोड़े।

इस विषय में यास्क अपने भाव को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है—

अयं मन्त्रार्थ चिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढः। अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः। न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः। प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः। —निरुक्त १३-१२

अर्थात्—इस प्रकार यह मन्त्रों के अर्थ पर विचार किया है। चाहे श्रुति प्रमाण से, चाहे तर्क से। प्रसंग का नाश नहीं करके मन्त्र निर्वचन करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय यह है कि मंत्रार्थ वेद में कहीं भी वर्णित बात का विरोध नहीं करेंगे। दूसरे शब्दों में, वेद में परस्पर-विरोधी वचन नहीं हैं। साथ ही, चाहे अर्थ श्रुति की समानता से करो अथवा युक्ति से करो, परन्तु प्रसंग (विषय अर्थात् देवता) को छोड़कर अर्थ नहीं करना चाहिए।

यास्क ने वेद के विषय में एक बात यह कही है कि वेद की ऋचाएँ तीन प्रकार की (अर्थवाली) हैं। कहा है—

…सैषा देवतोपपरीक्षा। यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्त्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः समन्त्रो भवति। तास्त्रिविधा ऋचः। परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिकयश्च। —निरुक्त ७-१

अर्थात्—अब देवता (मंत्र विषय) की उप परीक्षा (सूक्ष्म परीक्षा) है। अभिप्राय यह है कि मंत्रों में वर्णित विषय की सूक्ष्मता से परीक्षा की जा रही है। जिस कामनावाला ऋषि मंत्र में अर्थ को देखता है, वह मंत्र में स्तुति (विषय की विवेचना) करता है, वही इस मंत्र का देवता है। उन (देवताओं) का विचार कर कहा गया है कि ऋचा तीन प्रकार की हैं। (१) परोक्ष (पदार्थों) का अर्थ प्रकट करनेवाली; (२) प्रत्यक्ष (पदार्थों) का अर्थ प्रकट करनेवाली और अध्यात्म का अर्थ प्रकट करनेवाली।

एक बात और कही है—

परोक्षकृता : प्रत्यक्षकृताश्च मन्त्रा भूयिष्ठाः। अल्पश आध्यात्मिकाः।

—निरुक्त ७-३

अर्थात्—परोक्ष पदार्थ स्तुति की ऋचा और प्रत्यक्ष पदार्थों की स्तुति की ऋचा बहुत अधिक हैं। अध्यात्मपरक ऋचाएँ बहुत कम संख्या में हैं।

इस खण्ड में हमने वेदों के विषय में संक्षेप में बताया है। वेदों के अंगों से हमारा अभिप्राय है वेद में वर्णित विषय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय खण्ड

दर्शनशास्त्र वेद के उपांग हैं। ये छः हैं।

: १ :

(१) पूर्व-मीमांसा

मीमांसा शब्द का अर्थ (पाणिनि के अनुसार) जिज्ञासा है। जिज्ञासा अर्थात् जानने की लालसा।

अतः पूर्व-मीमांसा शब्द का अर्थ है जानने की प्रथम जिज्ञासा। इसके सोलह अध्याय हैं।

मनुष्य जब इस संसार में बना तो उसकी प्रथम जिज्ञासा यही रही थी कि वह क्या करे? अतएव इस दर्शनशास्त्र का प्रथम सूत्र मनुष्य की इस इच्छा का प्रतीक है।

ग्रन्थ का आरम्भ ही महर्षि जैमिनि इस प्रकार करते हैं—

अथातो धर्म जिज्ञासा ।। —पू० मी० १-१-१

अब धर्म (करणीय कर्म) के जानने की जिज्ञासा है। इस जिज्ञासा का उत्तर देने के लिए ही यह पूर्ण (१६ अध्यायवाला) ग्रन्थ रचा गया है।

कर्म एक विस्तृत अर्थवाला शब्द है। अतः इसके विषय में १६ अध्याय और ६४ पादोंवाला ग्रन्थ लिखना उचित ही था।

यहाँ हम इस ग्रन्थ की झलक मात्र भी देने में अशक्त हैं। केवल इतना बता देना ही पर्याप्त समझते हैं कि धर्म की व्याख्या यजुर्वेद में की गई है। हम बता आये हैं कि इस वेद के आरम्भ में ही यज्ञ की महिमा का वर्णन है। वैदिक परिपाटी में यज्ञ का अर्थ देव-यज्ञ ही नहीं है, वरन् इसमें मनुष्य के प्रत्येक प्रकार के कार्यों का समावेश हो जाता है।

बढ़ई जब वृक्ष की लकड़ी से कुर्सी अथवा मेज बनाता है तो वह यज्ञ ही करता है। वृक्ष का तना जो मूल रूप में ईंधन के अतिरिक्त, किसी भी उपयोगी काम का नहीं होता, उसे बढ़ई ने उपकारी रूप देकर मानव का कल्याण किया है। अतः उस बढ़ई का कार्य यज्ञरूप ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं। कच्चे लौह को लेकर योग्य वैज्ञानिक और कुशल शिल्पी एक सुन्दर कपड़ा सीने की मशीन बना देते हैं। इस कार्य से मानव का कल्याण हुआ है। इस कारण यह भी यज्ञरूप है।

इसी प्रकार के कर्मों की व्याख्या इस दर्शनशास्त्र में है।

: २ :

(२) ब्रह्मसूत्र (उत्तर-मीमांसा)

जब मनुष्य जीवन-यापन करने लगता है तो उसके मन में दूसरी जिज्ञासा जो उठती है, वह है ब्रह्म-जिज्ञासा। ब्रह्मसूत्र का प्रथम सूत्र ही है—

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।।

ब्रह्म के जानने की लालसा।

इस जिज्ञासा का चित्रण श्वेताश्वतर उपनिषद् में बहुत भली-भाँति किया गया है। उपनिषद् का प्रथम मन्त्र है—

ब्रह्मवादिनो वदन्ति—
किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ।।

—श्वे० उ० १-१

अर्थ है—ब्रह्म का कथन करनेवाले कहते हैं, इस (जगत्) का कारण क्या है? हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं? कहाँ स्थित हैं? (कैसे स्थित हैं?) यह सुख-दुःख क्यों होता है? ब्रह्म की जिज्ञासा करनेवाले यह जानना चाहते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य सृष्टि में आया तो प्रथम प्रश्न उपस्थित हुआ कि वह क्या करे? इस बात का कुछ ज्ञान होने पर दूसरा प्रश्न उत्पन्न हुआ कि 'यह सब क्या है, क्यों है? क्या होनेवाला है?' इत्यादि।

पहली जिज्ञासा कर्म (धर्म) की जिज्ञासा थी। और दूसरी जिज्ञासा जगत् का मूल कारण जानने (ज्ञान) की थी।

इस दूसरी जिज्ञासा का उत्तर ही ब्रह्मसूत्र अर्थात् उत्तर-मीमांसा है।

ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं और १६ पाद हैं। इसमें बताया है कि तीन ब्रह्म अर्थात् मूल पदार्थ हैं। प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा। तीनों अनादि हैं। इनका आदि-अन्त नहीं। तीनों ब्रह्म कहाते हैं और जिसमें ये तीनों विद्यमान हैं, अर्थात् जगत्, वह परम-ब्रह्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति परमाणु रूप है जो त्रित (तीन शक्तियों सत्त्व, रजस् और तमस् का गुट्ट) है। इन तीनों अनादि पदार्थों का वर्णन ब्रह्मसूत्र (उत्तर मीमांसा) में है।

जीवात्मा का वर्णन करते हुए इसके जन्म-मरण के बन्धन में आने का वर्णन भी ब्रह्मसूत्र में है। साथ ही मरण-जन्म से छुटकारा पाने का भी वर्णन है।

यह दर्शन भी वेद में कहे मन्त्रों की व्याख्या में ही है।

: ३ :

(३) सांख्य दर्शन

इस दर्शनशास्त्र में प्रकृति के परिणामों के बनने-टूटने का वर्णन किया गया है।

प्रकृति मूलरूप में सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था को कहते हैं। तीनों आवेश परस्पर एक-दूसरे को निःशेष (neutralize) कर रहे होते हैं। जैसे त्रिकंटी की तीन टाँगें एक-दूसरे को निःशेष कर रही होती हैं।

परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और असाम्यावस्था आरम्भ होती है। रचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है।

इस अवस्था को महत् कहते हैं। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। इसमें परमाणु की तीन शक्तियाँ बहिःमुख होने ने आस-पास के परमाणुओं को आकर्षित करने लगती हैं। अब परमाणुओं के समूह बनने लगते हैं। तीन प्रकार के समूह देखे जाते हैं। एक वे जिनमें रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस् अहंकार कहाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक-भाषा में इलैक्ट्रोन कहते हैं।

दूसरा परमाणु समूह वह है जिसमें सत्त्व गुण प्रधान होता है। वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते हैं।

तीसरा परमाणु समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है। इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूट्रोन कहते हैं। यह भूतादि अहंकार हैं।

इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये (अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम हैं।

तदनन्तर इन अहंकारों से पंच महाभूत बनते हैं। अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते हैं तो वे परिमण्डल कहाते हैं।

और भूतादि अहंकार एक स्थान पर (न्यूनाधिक संख्या में) एकत्रित हो जाते हैं तो भारी परमाणु-समूह बीच में हो जाते हैं और हल्के उनके चारों ओर घूमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगते हैं। इसे वर्तमान विज्ञान 'ऐटम' कहता है। दार्शनिक भाषा में इन्हें परिमण्डल कहते हैं। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार के हैं। इनको महाभूत कहते हैं।

(१) पार्थिव अथवा ठोस,
(२) जलीय,
(३) वायवी,
(४) आग्नेय,
(५) आकाशीय।

: ४ :

(४) वैशेषिक दर्शन

मूल पदार्थ—परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति का वर्णन तो ब्रह्मसूत्र में है। ये तीन पदार्थ ब्रह्म कहाते हैं। प्रकृति के परिणाम अर्थात् रूपान्तर दो प्रकार के हैं। महत्, अहंकार, तन्मात्रा तो अव्यक्त हैं, इनका वर्णन सांख्य दर्शन में है। परिमण्डल, पंच महाभूत तथा महाभूतों से बने चराचर जगत् के सब पदार्थ व्यक्त पदार्थ कहाते हैं। इनका वर्णन वैशेषिक दर्शन में है।

: ५ :

(५) न्याय दर्शन

न्यायदर्शन में अन्वेषण अर्थात् जाँच-पड़ताल के उपायों का वर्णन किया गया है।

कहा है कि सत्य की खोज के लिए सोलह तत्त्व हैं। उन तत्त्वों के द्वारा किसी भी पदार्थ की सत्यता (असलीयत) का पता किया जा सकता है। ये सोलह तत्त्व हैं—

(१) प्रमाण, (२) प्रमेय, (३) शंशय, (४) प्रयोजन, (५) दृष्टान्त, (६) सिद्धान्त, (७) अवयव, (८) तर्क, (९) निर्णय, (१०) वाद, (११) जल्प,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) वितण्डा, (१३) हेत्वाभास, (१४) छल, (१५) जाति और (१६) निग्रह-स्थान।

इन सबका वर्णन न्यायदर्शन में है और इस प्रकार इस दर्शनशास्त्र को तर्क करने का व्याकरण कह सकते हैं।

वेदार्थ जानने में तर्क का विशेष महत्त्व है। अतः यह दर्शनशास्त्र वेदार्थ करने में सहायक है।

दर्शनशास्त्र में कहा है—

…तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः॥ —न्याय० १-१-१

अर्थात्—इन सोलह तत्त्वों के ज्ञान से निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है (सत्य की खोज में सफलता प्राप्त होती है)।

: ६ :

(६) योग दर्शन

योग है जीवात्मा का सत्य के साथ संयोग अर्थात् सत्य प्राप्ति का उपाय। यह माना जाता है कि ज्ञान की प्राप्ति मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है और ज्ञान बुद्धि की श्रेष्ठता से प्राप्त होता है।

भगवद्गीता में कहा है—

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। —भ० गीता ३-४३

अर्थात्—इस प्रकार बुद्धि से परे आत्मा को जानकर, आत्मा के द्वारा आत्मा को वश में करके (अपने पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है)।

यही योग है।

इसे प्राप्त करने का उपाय योगदर्शन में बताया है। आत्मा पर नियन्त्रण बुद्धि द्वारा, यह योगदर्शन का विषय है। इसका प्रारम्भिक पग योगदर्शन में ही बताया है।

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥ —योग० २-१

अर्थात्—तप (निरंतर प्रयत्न) स्वाध्याय (अध्यात्म विद्या का अध्ययन) और परमात्मा के आश्रय से योग का कार्यक्रम हो सकता है।

मुख्यतः योग-क्रियाओं का लक्ष्य है बुद्धि को विकास देना। यह कहा है कि बुद्धि के विकास का अन्तिम रूप है—

ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्॥ —योग० १-४८,४९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—(योग से प्राप्त) बुद्धि को ऋतम्भरा कहते हैं और इन्द्रियों से (प्रत्यक्ष) तथा अनुमान से होनेवाला ज्ञान (सामान्य) बुद्धि से भिन्न विषय (अर्थ) वाला हो जाता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जो ज्ञान सामान्य बुद्धि से प्राप्त होता है वह भिन्न है और ऋतम्भरा (योग से सिद्ध हुई बुद्धि) से प्राप्त ज्ञान भिन्न अर्थवाला होता है।

इससे ही अध्यात्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।[1]

---

१. यहाँ इन छः दर्शनशास्त्रों का केवल सांकेतिक परिचय ही दिया गया है। इन का विस्तृत वर्णन लेखक की रचनाएँ—ब्रह्मसूत्र, सांख्य-दर्शन और न्याय-दर्शन पर सरल, सुबोध भाषा-भाष्य में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ खण्ड

: १ :

वैदिक काल

वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् एवं इतिहासकार पण्डित श्री भगवद्दत्त कहा करते थे कि वैदिक काल एक मिथ्यात्व (मिथ्या कथन) है। ऐसा काल जिसमें वेदों की सृष्टि हुई, कोई नहीं हुआ। हम समझते हैं कि उनका कथन ठीक है।

यूरोपियन विद्वान् समझते हैं कि वेद ईसा से दो-तीन सहस्र वर्ष पूर्व रचे गये। वे उस काल को वैदिक काल कहते हैं।

हमने पिछले खण्डों में बताया है कि वैदिक परम्परा है कि वेद उस समय कहे गये, जब बृहस्पति, सूर्य इत्यादि देवता बने। यूं तो वेद अनादि तथा अपौरुषेय हैं।

हमने बताया कि ये इतने ही पुराने हैं जितना परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति है। अर्थात् इनका आदि अन्त नहीं है।

तदपि यह वेद में ही बताया है कि इनका आविर्भाव पृथिवी पर मानव-सृष्टि होने से बहुत पहले से ही हो रहा था। जब मनुष्य पैदा हुआ तो ऋषियों ने वेद-ज्ञान को देवताओं द्वारा कहा जाता सुना और फिर मानवी (राष्ट्री) भाषा में मनुष्य मात्र को सुनाया।

यह सब वेद में वर्णित है और हम पुस्तक के प्रथम खण्ड में यह स्पष्ट कर चुके हैं।

अतः पण्डित भगवद्दतजी का कथन ठीक है कि जब वेद कहे गये हों ऐसा कोई समय नहीं था। हाँ, जब वेद ऋषियों ने मानवी भाषा में कहे, वह समय तो है। उसे वैदिक काल कहा जा सकता है। परन्तु उस समय मनुष्य भौतिक दृष्टि से बहुत ही सरल जीवन व्यतीत करता होगा।

हम इसे वैदिक काल कहते हैं। वेद कहे जाने के काल को हम वैदिक काल नहीं कह सकते। इतिहास में उस काल को वैदिक काल कहते हैं जब वैदिक भाषा ही राष्ट्री भाषा थी। अर्थात् वैदिक भाषा और बोलने की भाषा में अन्तर नहीं था। दूसरे शब्दों में यह समझना चाहिए कि जब ऋषि लोग वेद-मन्त्र कहते थे तो सुननेवाले उसका अर्थ समझ जाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

विश्वान्देवाऽजगत्या विवेश तेन चाक्लृप ऋषयो मनुष्याः ।।

—ऋ० १०-१३०-५

अर्थात्—जगत् के सम्पूर्ण देवता मन्त्र कहने लगे। तब ऋषि और मनुष्य सामर्थ्यवान हुए।

हम कल्पना करें कि मानव-सृष्टि पृथिवी पर एक ही स्थान पर (ध्रुव के दक्षिण में किसी सुरक्षित स्थान पर) हुई। ऋषि और मनुष्य साथ-साथ ही उत्पन्न हुए तो यह भी समझ में आ सकता है कि ऋषियों की और सामान्य मनुष्यों की भाषा एक ही रही होगी। अतः यह कल्पनातीत नहीं कि जो कुछ ऋषि कहते होंगे सामान्य मनुष्य उनको समझ जाते होंगे।

साथ ही मनुष्य सृष्टि एक ही स्थान पर होने का अभिप्राय यह था कि मनुष्यों की संख्या बहुत कम रही थी। एक ही स्थान पर मानव-सृष्टि आरम्भ होने का यह भी परिणाम हुआ होगा कि भाषा में विकृति नहीं आयी थी।

'वैदिक एज' (वैदिक काल) पुस्तक का लेखक लिखने बैठा भारत का इतिहास और प्रमाण मान बैठा उन देशों के विद्वानों को, जिनका इतिहास ईसा से एक-दो सौ वर्ष से पूर्व का नहीं है। हमारा अभिप्राय अंग्रेज विद्वानों से है। इंग्लैंड के विषय में, सीजर जो ईसा से एक सौ वर्ष पूर्व हुआ था, कहता था कि इंग्लैंड के लोग पेड़ों पर रहते हैं और मनुष्य का मांस खाते हैं। ऐसे अल्प इतिहास रखनेवाली जाति के विद्वानों के कथन को 'वैदिक एज' के लेखक ने सत्य मान लिया।

देश के कुछ अन्य विद्वान् भी हैं जो मनुष्य की सृष्टि आज से बीस सहस्र वर्ष पूर्व हुई मानते हैं। 'वैदिक-एज' के लेखक को इन तथाकथित वैज्ञानिकों के वचन भी मान्य नहीं। वे वहाँ के ईसाई मतावलम्बियों को ही मान्यता देते हैं।

हमारा कहना यह है कि यूरोपियन वैज्ञानिकों की दृष्टि २०,००० वर्ष से दूर जा सकती ही नहीं। यह इस कारण कि यूरोप हिम-युग से पहले था ही नहीं। जो केवल भौतिक चिह्नों को देखकर इतिहास की कल्पना करते हैं, उनके लिए इस हिम-युग से पहले कुछ था ही नहीं।

इस हिम-युग के विषय में हम पुस्तक के प्रथम खण्ड में बता चुके हैं। हिमपात भूमण्डल के सब देशों में नहीं हुआ था। यह उत्तरी गोलार्द्ध के अक्षांश ४० डिग्री से उत्तर में ही हुआ था। इसका कारण भी हम बता चुके हैं। यह पृथिवी के २६,००० वर्ष में एक बार सूर्य से दूसरी ओर झुक जाने के कारण है।

यह हिमपात भारतवर्ष में कभी भी नहीं हुआ। यही कारण है कि यूरोपियन सभ्यता और इतिहास प्रति हिमपात में समाप्त हो जाता रहा है।

अंतिम हिमपात आज से अठारह-उन्नीस सहस्र वर्ष पहले हुआ था। यूरोप वालों का इतिहास तो ईसा से पाँच-छः सहस्र वर्ष पूर्व से आरम्भ होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वैदिक-एज' लिखनेवाले ने इन ईसाई लेखकों की बात को सत्य मान लिया है। हमारे यहाँ (भारत में) तो बहुत पहले का इतिहास विदित है।

हमने बताया है कि भारतीय परम्परा के अनुसार पृथिवी पर मनुष्य सृष्टि आज से उनतालीस लाख वर्ष पूर्व हुई थी। भारतीय इतिहास की दृष्टि से 'वैदिक एज' पुस्तक रद्दी की टोकरी में फेंकने के योग्य है।

वैदिक परम्परा यह है कि जब मानव-सृष्टि हुई तो उस अमैथुनीय सृष्टि में पूर्व कल्प के कुछ पुण्य कर्म जीवात्मा भी उत्पन्न हुए थे। अपनी अन्तर्दृष्टि से वे देवताओं से उच्चारित हो रहे छन्दों को समझकर उससे ज्ञानवान हुए और उन्होंने सामान्य मनुष्यों को भी (ज्ञानवान) किया।

उस समय मानवी भाषा वही थी जो ऋषियों ने मनुष्यों को सिखाई थी और उसी भाषा में वेद सुनाए और मनुष्यों को भी सामर्थ्यवान् (ज्ञानवान) किया।

यह काल, अर्थात जब वेद-वाणी और राष्ट्री एक ही रही, कब तक रहा? यह बताना कठिन है। कम-से-कम इतना निश्चय से कहा जा सकता है कि तब तक अवश्य रहा होगा जब तक मनुष्य अपने जन्म-स्थान पर संख्या में अत्यधिक होकर भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाकर बसने नहीं लगे। जिन प्रवजन करनेवालों के साथ विद्वान् नहीं गये, कालान्तर में उनकी बोलनेवाली भाषा में अन्तर आ गया और तब वहाँ वेद-वाणी और जन-वाणी में अन्तर आ गया।

हम समझते हैं कि तब वहाँ वैदिक काल नहीं रहा।

ऐसा अनुमान है कि ध्रुव के दक्षिण में उत्पन्न मानव-सन्तान जब बहुत बढ़ गयी और दूर-दूर स्थानों पर भोजन की खोज में जाने लगी तो कुछ लोग भारत में भी आये और यहाँ बस गये। इस प्रकार उनके साथ वैदिक काल भारत में भी आया। परन्तु यह पूर्ण सत्युग का काल रहा प्रतीत होता है। कारण यह कि जब सत्युग और त्रेतायुग के संधिकाल के समय जल-प्लावन आया तो वेद के ज्ञाता ऋषिगण भी मनु के साथ बच गये। मनु उनको लेकर ही जीवन बचाने में सफल हो सका।

जल-प्लावन से पूर्व के विषय में बहुत ही कम ज्ञात है। जल-प्लावन के उपरांत क्या हुआ यह हम अगले अध्याय में बताएँगे।

यहाँ दो बातें स्पष्ट कर देना चाहते हैं। एक यह कि जल-प्लावन एक सत्य घटना है। यह कब हुआ था? इस विषय में हमारा यह मत है कि यह सत्युग और त्रेतायुग की संधि पर हुआ था।

जल-प्लावन के विषय में वाल्मीकि रामायण, महाभारत, महाभागवत् पुराण, वायु पुराण, इत्यादि सब भारतीय इतिहास के ग्रंथों में वर्णन मिलता है। भारत से बाहर भी उसका वर्णन मिस्री, यहूदी, सुमेर, बेबीलोन, दक्षिण अमेरिका इत्यादि के प्राचीन देशों के ग्रंथों में मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विषय में पं० भगवद्दत्त अपने ग्रंथ भारतवर्ष का वृहद् इतिहास में लिखते हैं—

...जल-प्लावन को मिस्री, यहूदी, बाबल (बभ्रु, बभ्र, वेद; बब्री अवेस्ता; बवेरु, बाली) वाले, सुमेर (बाबल देश के निचले भागों के लोग) दक्षिण अमेरिका-वासी और भारतीय लगभग समान प्रकार से जानते थे। संसार की इन विभिन्न जातियों ने किसी अति पुरातन काल में किसी सभा में एकत्र होकर यह निश्चय नहीं किया था कि एक कल्पित असत्य प्रचलित किया जाए। अतः जल-प्लावन की घटना एक ऐतिहासिक घटना थी।

—भारतवर्ष का बृहद् इतिहास
प्रथम भाग (सं० २००८), पृ० २०३

हम भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं। इस जल-प्लावन के पूर्व आकाश गंगा के सातों सूर्य समीप-समीप हो गये थे। तब इनसे पृथिवी पर बहुत गर्मी हो गयी। सर्वनाश हुआ। तदनन्तर भारी वर्षा हुई और अधिकांश भू-भाग जल-मग्न हो गया। तदनन्तर पुनः नवीन सृष्टि हुई।

इसके काल के विषय में हमने बताया है कि यह घटना वर्तमान चतुर्युगी के सत्युग तथा त्रेता युग के संधिकाल पर हुई। यह महाभारत के प्रमाण से विदित होता है।

महाभारत में लिखा है—

यदिदं सप्तमं जन्म पद्मजं ब्रह्मणो नृप।
तत्रैष धर्मः कथितः स्वयं नारायणन ह॥
पितामहाय शुद्धाय युगादौ लोकधारिणे।
पितामहश्च दक्षाय धर्ममेतं पुरा ददौ॥
ततो ज्येष्ठे तु दौहित्रे प्रादाद् दक्षो नृपोत्तम।
आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठो विवस्वाञ्जगृहे ततः॥
त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान् मनवे ददौ।
मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ॥
इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थित।
गमिष्यति क्षयान्ते च पुनर्नारायणं नृप॥

—महाभारत शान्ति० ३४८-४८,४९,५०,५१,५२

अर्थ हैं—(यहाँ वेद की परम्परा का वर्णन किया है। कहा है) यह जो ब्रह्म का कमल पर सातवाँ जन्म हुआ, यह स्वयं नारायण (परमात्मा) से है। परमात्मा से ब्रह्माजी को इस (वेद) का उपदेश मिला। तब ब्रह्मा ने इस धर्म का उपदेश दक्ष (अग्नि) को दिया। इसके उपरान्त दक्ष ने अपने ज्येष्ठ दौहित्र, आदित्यों (पृथिवी) के सविता (सूर्य) से बड़े पुत्रों को उपदेश दिया और उसने विवस्वान को दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर त्रेता युग के आदि में विवस्वान ने मनु को इस (वेद) का उपदेश किया। मनु ने सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों के कल्याण के लिए अपने पुत्र इक्ष्वाकु को उपदेश किया।

इक्ष्वाकु के उपदेश से इस सनातन धर्म (वेद) का सम्पूर्ण जगत् में प्रचार और प्रसार हो गया। कल्प के अन्त में पुनः यह ज्ञान परमात्मा में ही समा जाएगा।

इस प्रकार हमारा मत है कि एक तो मनुष्य-सृष्टि के आरम्भ में यह ज्ञान ब्रह्मादि ऋषियों के द्वारा यहाँ प्रचार पाया और जब सत्युग और त्रेतायुग की संधि पर जल-प्लावन हुआ तब मनु, जो प्लावन-पूर्व सृष्टि का जीव था, उसने उन ऋषियों की सहायता से जो उसके साथ थे, पुनः वेद-ज्ञान का उपदेश अपने ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को दिया और उसने इसका सब प्रजाओं में प्रचार और प्रसार किया।

अतएव हम दो वैदिक काल मानते हैं। एक वह जब ब्रह्मादि ऋषियों ने वेद का उपदेश लोगों को दिया। यह वह काल है जब आदि में ब्रह्म का सातवाँ जन्म हुआ।

सातवें जन्म का अभिप्राय है सातवाँ मन्वन्तर जब आरम्भ हुआ और वैवस्वत-सुत बनने आरम्भ हुए। तब सूर्य और अदिति (पृथिवी) की सन्तान को उपदेश मिला। इस समय वेद-भाषा और राष्ट्री एक ही थी।

दूसरा काल वह है जब महा जल-प्लावन के उपरान्त त्रेतायुग के आरम्भ में मनु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को वेद-ज्ञान का उपदेश दिया और फिर इक्ष्वाकु ने सब लोगों को इस कल्याणमयी वाणी का उपदेश दिया। इस प्रकार ये दो वैदिक-काल हैं। दोनों कालों में बहुत ही कम संख्या में लोगों को वेद का उपदेश मिला था। और तब वेदभाषा लोगों की बोलचाल की भाषा ही थी।

इन दोनों कालों की कथा का हम वर्णन करना चाहते हैं।

आदि युग में मानव-सृष्टि के तिथिकाल के विषय में हमारा मत है कि वह आज से १९,००,००० वर्ष पहले की बात है। हमने जगत्-रचना अर्थात् ज्योतिष शास्त्र का प्रमाण दिया है।

जो लोग कहते हैं कि वेद ईसा से दो-तीन सहस्र वर्ष पहले कहे गये थे, तो यह उनका उत्तरदायित्व है कि वह अपनी बात के पक्ष में प्रमाण दें।

अनुमान भी किसी प्रत्यक्ष के आधार पर ही होता है। जैसे अग्नि और धुएँ का संबंध प्रत्यक्ष है। इस कारण धुआँ देखकर ही अग्नि का अनुमान लगाया जाता है।

यह यूरोपियन विद्वानों का दायित्व है कि ये बताएँ कि किस प्रत्यक्ष की अनुभूति से वे वैदिक काल का अनुमान लगाते हैं।

भारत के विद्वान्, जिन्होंने 'वैदिक एज' नामक पुस्तक लिखी है, उनकी बुद्धि पर तो हमें दया आती है। वे दूसरों की जूठन चबानेवाले अपने कथन में कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार नहीं रखते। उनका कहना है कि वेद कहे जाने का काल ईसा पूर्व १००० वर्ष है। इनके कथन में प्रमाण जो ये देते हैं, उसका आधार है भाषा।

परन्तु भाषा-सम्बन्धी प्रमाण भी निराधार प्रतीत होता है।

इनको यह विदित होना चाहिये कि पाणिनी का काल ईसा से तीन हजार वर्ष पहले का आँका गया है और पाणिनी के प्रयोग महाभारत में मिलते हैं।

महाभारत के विषय में यूरोपियन लेखक भी मानते हैं कि यह वर्तमान रूप में ईसा की प्रथम शताब्दी में लिखा जा चुका था। इसका अभिप्राय यह है कि पाणिनी इससे पहले हुआ था और पाणिनी से पहले वैदिक भाषा का अपभ्रंश हो चुका था, जिस पर पाणिनी ने इसे संशोधित कर इसका नाम संस्कृत भाषा रखा।

हमारे कथन का अभिप्राय यह है कि इस कथन में भी कोई युक्ति नहीं कि वेद के कहे जाने का काल ईसा से एक सहस्र वर्ष पहले का है!

वस्तु स्थिति यह है कि यूरोप के तथाकथित भाषाविज्ञ भी यह मानते हैं कि यूरोपीय भाषाएँ और आर्य-भाषा संस्कृत दोनों की जननी एक साँझी भाषा रही है। इसे वह भारोपीय भाषा कहते हैं। उनका यह कथन ठीक है और वह भारोपीय भाषा वैदिक भाषा ही है।

वैदिक भाषी लोग ऋतु परिवर्तन के कारण जब ध्रुव देश से परिव्रजन करने लगे तो कुछ लोग भारत में चले आये और कुछ यूरोप के दक्षिणी देशों में चले गये।

किसी हिम-युग के समय यूरोप में गये लोगों को वहाँ से भी भागना पड़ा और इस भाग-दौड़ में उनका सम्पर्क वेद के विद्वानों से नहीं रहा और उनकी भाषा विकृत होकर ग्रीक, लेटिन इत्यादि में परिवर्तित हो गयी। परन्तु भारत के विद्वानों ने अपना सम्पर्क वेदों से बनाये रखा और परिणामस्वरूप पाणिनी की संस्कृत वैदिक भाषा के सर्वथा समीप बनी रही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में वैदिक परम्पराएँ अक्षुण्ण बनी रही हैं। दूसरे देशों में परम्पराओं के टूटने का कारण था उन देशों पर बार-बार हिम-युग का प्रकोप होना। उनके परिणामस्वरूप वहाँ के लोग वेद के विद्वानों से सम्पर्क नहीं रख सके। इसके विपरीत हिमालय के कारण भारत हिम-युगों से प्रभावित नहीं हुआ।

हमारा मत है कि वेद भाषा और ज्ञान ही दूसरे देशों में गया है। इसका प्रमाण भाषा ही है।

वैदिक भाषा में एक शब्द है बभ्रु। इसका अर्थ मोनियर विलियम करता है---deep brown। इस रंग से यह bear अर्थात् भालू अर्थवाला बन गया। अंग्रेजी में यह beaver अर्थात् ऊद-बिलाव अर्थवाला हो गया। कारण यह कि उसका रंग भूरा (brown) होता है। Old Icelander में यह शब्द bjor, जर्मनी में bicher

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लैटिन में fibre, रूसी भाषा में bolern, अवष्टी भाषा में bawri, स्पैनिश भाषा में befer, लिथूनियम भाषा में behras तथा बलगेरियन भाषा में beher बन गया।

ये सब शब्द भूरे रंग से सम्बन्धित अर्थवाले हैं।

इस प्रकार अति प्राचीन भाषाओं का नवीन भाषाओं से सम्बन्ध वैदिक शब्दों से विदित हो जाता है।

वैदिक परम्परा तो यह है कि शब्द और मन्त्र पदों में परमात्मा की ओर से उच्चारित हुए हैं। उन शब्दों अथवा पदों के अर्थ यौगिक (गुणों अथवा कर्मों से सम्बन्धित) होते हैं और विश्व की भाषाओं के शब्द उन वैदिक शब्दों से ही बने हैं।

हाँ, यह कहा जा सकता है कि जिन-जिन अपभ्रंश भाषाओं का मूल वैदिक भाषा से सम्बन्ध नहीं रहा, उनका वैदिक भाषा से अन्तर बढ़ता गया जबकि भारत में संस्कृत भाषा का अन्तर इतना नहीं बढ़ा।

उदाहरण के रूप में 'अग्नि' शब्द है। वेद में अग्नि शब्द शक्ति के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वर्तमान संस्कृत भाषा में यह 'आग' के अर्थों में प्रयोग होता है। आग एक प्रकार से शक्ति का प्रस्फुटित होना ही है।

अतः वेद की भाषा को ईसा से एक सहस्र वर्ष पुरानी कहना अज्ञानता का परिचय देना है। यह स्पष्ट है कि जैसे वैदिक भाषा पाणिनी संस्कृत की जननी है, वैसे ही यह ग्रीक और लेटिन की जननी भी है।

वास्तव में यूरोपियन भाषाविज्ञों की भारोपीय भाषा की कल्पना वैदिक भाषा के विषय में ही है। उनके विचार से भी वैदिक भाषा ग्रीक से पुरानी है। अर्थात् वह कम-से-कम ईसा से चार-पाँच सहस्र वर्ष पहले की तो है ही।

भारत में वैदिक भाषा कभी जन-जन की भाषा थी। प्रश्न है कब? भारतीय परम्परा के अनुसार यह दो कालों में जन-जन की भाषा रही है। एक सृष्टि के आदि में और दूसरे भारत में जल-प्लावन के उपरांत। जल-प्लावन के समय बहुत कम संख्या में लोग रह गये थे और उनसे ही सृष्टि का विस्तार हुआ है।

भारतीय परम्परा के अनुसार मनुष्य-सृष्टि वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में हुई थी। इसे लगभग ३६,००,००० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। दूसरा काल है महा जल-प्लावन के उपरांत। तब भी बहुत ही न्यून संख्या में लोग हिमालय पर्वत की चोटी पर बच गये थे। इसे भी भारतीय परम्परा के अनुसार लगभग २१ लाख वर्ष हो चुके हैं।

लोग (बौनी बुद्धिवाले) कहते हैं कि इतने लम्बे काल से सृष्टि नहीं हो सकती। प्रश्न है कि क्यों नहीं हो सकती? इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं है। परन्तु भारतीयों के पास तो इसका लिखित प्रमाण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

भारतीय इतिहास पुराणों में

वर्तमान युग के शिक्षित परन्तु कल्पनाविहीन लोग कहते हैं कि पुराणों में गप्पें हाँकी गयी हैं। हमारा मत है कि वे लोग पुराणों के वास्तविक प्रयोजन को समझे ही नहीं।

पुराण केवल इतिहास नहीं हैं। ये इतिहास से बहुत अधिक हैं। जिन्होंने इसे केवल इतिहास माना, वे इसमें इतिहास के अतिरिक्त कथनों को देख परन्तु उनका प्रयोजन, उनका अर्थ तथा उनके लिखने की शैली को न समझ, इन ग्रंथों को गल्प समझ रहे हैं।

प्रायः प्रत्येक पुराण में पुराण ग्रंथ की परिभाषा कही है। यह कहा है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्॥

—श्री विष्णु पुराण ३-६-२५

अर्थात्—सृष्टि, प्रलय, वंश (प्रकृति के परिणाम) और मन्वन्तर तथा भिन्न-भिन्न राजवंशों का वर्णन इनमें दिया गया है।

इसका अभिप्राय यह है कि वेद में जिस बात को कल्प और ज्योतिष के अधीन कहा है, वे दोनों बातें पुराणों में सरल, सुबोध भाषा में कही गयी हैं। इन दो का उल्लेख आया है सर्ग, वंश और मन्वन्तर कहकर। पुराणों में पृथिवी पर के मुख्य-मुख्य राजवंशों का भी वर्णन है और फिर प्रलय का भी वर्णन है।

रचना और प्रलय का वर्णन जैसा वेद में है और ज्योतिष शास्त्र में कहा है, वैसा ही पुराणों में दिया है। उदाहरण के रूप में वेद में कहा है—

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥

—ऋ० १-१६३-३

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि परमात्मा के तेज जिसे आदित्य, अर्वन कहते हैं, उसने गुप्त रूप से संगठित त्रित की साम्यावस्था को भंग कर परमाणुओं के तीन प्रकार के दिव्य बन्धन (संयोग) बनाये अर्थात् अहंकार बनाये।

इन तीन (अहंकारों) को वेद में आपः कहा है।

यही बात सांख्य दर्शन में कही है। वहाँ कहा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति हञ्चविंशतिर्गणः।

—सां० १-६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बात को अत्यन्त सरल भाषा में पुराण में कहा है—

अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः ।
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम् ।।
अक्षयं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवम् ।
शब्दस्पर्शविहीनं तद्रूपादिभिरसंहितम् ।।
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम् ।
तेनाग्रे सर्वमेवासीद् व्याप्तं वै प्रलयादनु ।।

—श्री विष्णु पुराण १-२-१९.२०,२१

अर्थात्—जो सत्-असत् रूप कण अव्यक्त सूक्ष्म प्रकृति तथा प्रधान हैं, वह ऋषियों से नित्य कहा जाता है।

वह अक्षय है। वह अपने ही आधार पर टिका है। यह शब्द, स्पर्शादि लक्षणों से रहित है। वह त्रिगुणमयी जगत् का कारण है। वह अनादि उत्पत्ति और लय से रहित है।

आगे कहा है—

गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ।
गुणव्यञ्जनसम्भूतिः सर्गकाले द्विजोत्तम ।।
प्रधानतत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ।।
प्रधानतत्त्वेन समं त्वचा बीजमिवावृतम् ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।।

—श्री विष्णु पुराण १-२-३३,३४,३५

अर्थ है—रचना-काल आने पर प्रधान (प्रकृति) की साम्यावस्था विष्णु के क्षेत्रज्ञ रूप से अधिष्ठित हुई तो उससे यह तत्त्व की उत्पत्ति हुई।

उत्पन्न हुए को जहाँ-जहाँ प्रधान तत्त्व ने आवृत किया, महत् तीन प्रकार का हो गया। सात्त्विक, रजस् और तमस्।

जैसे बीज छिलके से ढँका रहता है वैसे ही यह त्रिविध महत् प्रधान तत्त्व से व्याप्त हो गया। फिर तीन अहंकार तैजस्, वैकारिक और भूतादि बन गये।

वेद, सांख्यदर्शन और विष्णु पुराण में सृष्टि-रचना समान रूप में वर्णित है।

इसी प्रकार प्रलय का भी वर्णन है।

पुराणों में तीसरी बात देवताओं की परम्परा का वर्णन है। इसे पुराणों के लक्षण-श्लोक में वंश के नाम से कहा है।

जगत् के देवता प्रकृति से उत्पन्न होने से प्रकृति के वंशज कहाते हैं।

इनका भी वेदों में और फिर सांख्यादि दर्शनों में वर्णन है। उदाहरण के रूप में एक वेद मन्त्र में कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम्।

—ऋ० १-२-१

अर्थात्—(वायो आ याहि) हे वायु आओ। (इमे दर्शत सोमाः) इन (ज्ञान से) देखने योग्य सोमों से (परिमण्डलों अर्थात् ऐटमों को तुमने) (अरंकृताः) सुन्दर बनाया है। (तेषां) उनकी (पाहि) रक्षा करो। उन (सुन्दर बने सोमों में) होम करो। (अर्थात् उन परमाणुओं से सृष्टि-रचना करो)।

इस मन्त्र में वायु देवता का कार्य बताया है। वह सोम अर्थात् परिमण्डलों को सजाता है। वायु के विषय में यास्क कहता है—

अथातो मध्यस्थाना देवताः। तासां वायुः प्रथमागामी भवति।

—नि० यास्क० १०-१

अर्थात्—वायु दूसरे स्थान पर बना देवता है। दूसरे का अभिप्राय यह है कि यह सृष्टि-रचना क्रम में पहले नहीं बना। पहले बने देवताओं के उपरान्त बना।

साथ ही कहा है—

वायुर्वातेः। वेतेवा स्याद् गतिकर्मणः।

अर्थात्—वायु वा से बना है। गति अर्थ वाला है।

इस सबका अभिप्राय है कि वायु गति पैदा करनेवाली शक्ति है जो रचना-क्रम में दूसरे स्थान पर बनी।

प्रथम स्थान पर कौन हुआ? उसका भी वेद में वर्णन है। कहा है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

—ऋ० २-१२-१

अर्थात्—(यो जात एव प्रथमः) जो सबसे पहले उत्पन्न हुआ। (मनस्वान् देवान् देवः) मनन शक्ति से युक्त देवताओं में देवता। (क्रतुना परि अभूषत्) निर्माण करनेवाला और सुन्दर बनाता है।

(यस्य शुष्मात् अभ्यसेताम् रोदसी) जिसके बल से द्यावा और पृथिवी उत्पन्न हुए। (नृम्णस्य मह्ना) महान् समृद्ध जगत् का।

इस मन्त्र का अभिप्राय है कि सृष्टि-रचना में सबसे पहले इन्द्र उत्पन्न हुआ। यह महान् शक्तिवान् और अपने बल से द्यावा (सूर्य) तथा पृथिवी को बनानेवाला है। इससे ही सब संसार सुन्दर और महान् बना है।

इन्द्र के विषय में शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि यह ऋषियों (परमाणुओं) के मध्य में स्थित होता है और जब परमाणु असाम्यावस्था में होते हैं, तो इन्द्र उनमें से निकलकर सात पुरुषों को उत्पन्न करता है। —शतपथ ब्रा० ६-१-१-१,२

इन देवताओं, इन्द्र और वायु का ही पुराणों में उल्लेख है।

पुराणों में जो वंश का वर्णन कहा है वह इन्हीं प्रथम जाताः तथा मध्यस्थानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं का वर्णन है।

हमने संक्षेप में बताया है कि पुराणों में देवताओं के वंश से क्या अभिप्राय है। देवता सृष्टि-रचना के समय भिन्न-भिन्न दिव्य शक्तियों के नाम हैं।

पुराण ग्रंथों में चौथी बात है मन्वन्तरों का वर्णन। यह हम बता चुके हैं कि मन्वन्तर सृष्टि-रचना के काल का तथा रचना-विधियों का वर्णन मात्र है।

पुराणों में पाँचवीं बात है पृथिवी का इतिहास। इसे पुराण के लक्षणों में 'वंशानुचरित' कहा है।

पुराणों के विषय में एक और बात समझने की है। वह यह कि कुछ अन्तरिक्ष अथवा सृष्टि की बातों का अलंकारों में वर्णन है। जो अलंकारों को समझता नहीं जानते वे पुराणों के अर्थों को नहीं समझ सकते।

उदाहरण के रूप में वराह अवतार की कथा है। वराह का अर्थ है जो जल का हरण करे और वराह का अर्थ सूअर भी है।

वराह का वर्णन एक अवतार के रूप में किया है और अलंकारिक चित्रण करनेवाले ने उसे सूअर के रूप का बना दिया है।

जल का हरण करनेवाले वराह अवतार का हम आगे चलकर वर्णन करेंगे। परन्तु उसको सूअर का रूप देना चित्रकारों का घटनाओं को अलंकार के रूप में वर्णन करने का यत्न है।

इसी प्रकार प्रलय के समय विष्णु (यज्ञ रूप परमात्मा) का समुद्र में शेषनाग की शय्या पर लेटने का चित्रण किया है। वेदों में समुद्र शब्द अन्तरिक्ष अर्थात् व्योम के लिए प्रयुक्त हुआ है और उस अन्तरिक्ष को जल का समुद्र दिखाकर परमात्मा को शेषनाग (प्रकृति) पर लेटे हुए दिखाया गया है। जो लोग विष्णु का अर्थ यज्ञ-रूप परमात्मा लेते हैं और समुद्र का अभिप्राय व्योम लेते हैं, साथ ही शेष-नाग का अभिप्राय साम्यावस्था में प्रकृति समझते हैं, वे उस अलंकारिक चित्रण का अर्थ समझ सकते हैं।

वर्तमान युग के कुछ बुद्धिमान आज प्रश्न करते हैं कि पुराण-लेखकों ने पाँच प्रकार के वर्णन एक ही ग्रंथ में क्यों किये और फिर उसे अलंकार रूप में क्यों लिखा? इसका उत्तर हमारे पास नहीं है। फिर भी हम आज के युग के विद्वानों से यह आशा करते हैं कि वे पुराणों की विशेषताओं को समझते हुए ग्रन्थों का अध्ययन करें और इतिहास अंश को पृथक् निकालकर पढ़ें तो उनको पुराण अद्वितीय ग्रन्थ प्रतीत होंगे अपितु वेदों के समर्थक प्रतीत होंगे।

हमने पुराणों का इतिहास-अंश पृथक् करके देखने का यत्न किया है। उस अध्ययन के परिणामस्वरूप ही हम वैदिक काल का वर्णन लिख रहे हैं।

वेद में वैदिक काल का वर्णन नहीं है। कारण यह है कि वेद आदि सृष्टि में कहे गये थे। यदि यह कहा जाए कि मानव-सृष्टि से पहले ही कहे गये थे तो अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य होगा। इस कारण उस काल के लोगों का वर्णन उनमें नहीं हो सकता। इसी कारण हमने वैदिक काल उस काल को माना है जब मानव समाज की भाषा, वैदिक भाषा थी, अर्थात् लोग वेदों को ऐसे ही पढ़ और समझ सकते थे जैसे कोई भी सामयिक ग्रन्थ सामयिक भाषा में पढ़ा और समझा जा सकता है।

इस दृष्टि से ही हमने इस खण्ड में जो वर्णन लिखा है, वह वैदिक काल का वर्णन ही है।

: ३ :

पुराणों में अवतारों का अर्थ

अवतार का अर्थ है अवतरण। किसका अवतरण ?

इस अवतरण का अभिप्राय समझने के लिए भगवद्गीता के इस श्लोक का अर्थ समझने की आवश्यकता है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम्॥

—भ० गीता १०-४१

अर्थ है—(यत् तत् विभूतिमत्) जो-जो ऐश्वर्ययुक्त। (सत्त्वम्) श्रेष्ठ पदार्थ हैं। (श्रीमत् ऊर्जितम् एव) अथवा कान्तियुक्त तथा शक्तियुक्त भी हैं।

(तत् तत् एव त्वं अवगच्छ) तुम उसे (मम तेजोऽश सम्भवम्) मेरे तेज के अंश में से उत्पन्न समझो।

गीता में मम् मया इत्यादि शब्दों से अभिप्राय परमात्मा के और परमात्मा से समझना चाहिए।

श्लोक का अभिप्राय यह बनता है कि इस संसार में जो-जो ऐश्वर्य, कान्ति और शक्तियुक्त पदार्थ हैं, सब परमात्मा के तेज के एक अंश से ही बने हैं।

यूँ तो प्रत्येक प्राणी में प्राण (कार्य करने की शक्ति) परमात्मा की ही देन है। ब्रह्मसूत्र में कहा भी है कि 'वाकादि इन्द्रियों के कार्यों से (प्राणी में) उस परमात्मा के चिह्न का पता चलता है।' —ब्र० सू० १-३-१८

और फिर लिखा है कि 'यह (प्राण शक्ति) उसने इतर(जीवात्मा) की सलाह से कार्य करने के लिए दी हुई है।'

अभिप्राय यह है कि प्राणियों में प्राण (कार्य करने की शक्ति) परमात्मा की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो विशेष विभूतियुक्त श्रीमत् और ऊर्जितम् पदार्थ अथवा प्राणी होते हैं, उनमें परमात्मा की विशेष शक्ति होती है।

ऐसे प्राणी ही परमात्मा का अवतार कहाते हैं।

अतः आर्य इतिहास में जिस-जिस अवतार का वर्णन आया है, वे परमात्मा की विशेष प्राण-शक्ति को रखनेवाले थे। इन अवतारों की गणना पुराणों में करायी गयी है। ये सब ऐतिहासिक व्यक्ति हुए हैं।

वास्तव में भारतीय पद्धति से इतिहास इन अवतारों का ही इतिहास है। यह पुराणों में ही मिलता है। इस कारण पुराण इतिहास के ग्रंथ हैं।

हमने यह बताया है कि यह आवश्यक नहीं कि अवतार मनुष्य-तुल्य प्राणी ही हो। मुख्य बात जो एक अवतार में देखने की है, वह है उसमें ईश्वरीय शक्ति।

यहाँ एक बात और स्मरण रखनी चाहिए कि परमात्मा का तेज (प्राण) तो जीवों में भी है और निर्जीव वस्तुओं में भी है। जब परमात्मा की विशेष शक्ति किसी निर्जीव पदार्थ में होती है तो वह देवता कहाती है। जैसे अग्नि, इन्द्र, वायु, वरुण इत्यादि। वे भी अवतार तब होते हैं जब वे इस सृष्टि में विशेष ऐश्वर्ययुक्त अथवा सामर्थ्ययुक्त कार्य करने के योग्य होते हैं।

महाभागवत् पुराण में अवतारों की गणना इस प्रकार की है—

(१) ब्रह्मा
(२) सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार
(३) वराह
(४) नारद
(५) नर-नारायण
(६) कपिल
(७) दत्तात्रेय
(८) यज
(९) ऋषभदेव
(१०) पृथु
(११) मत्स्य
(१२) कच्छ
(१३) धन्वन्तरि
(१४) मोहिनी
(१५) नरसिंह
(१६) वामन
(१७) परशुराम
(१८) व्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९) राम
(२०) कृष्ण
(२१) बुद्ध
(२२) कल्कि

इन अवतारों की गणना करने के उपरान्त महाभागवत् का लेखक कहता है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥

—भाग० महापुराण १-३-२६,२७

अर्थ है—जैसे एक सरोवर से हजारों नाले-नदियाँ निकलती हैं [सत्त्वनिधि भगवान् से सहस्रों ही अवतार हुए हैं।

वे ऋषि-मुनि, देव और मनु-पुत्र महान् ओजवाले हुए हैं।

यह वही बात है जो भगवद्गीता (१०-४१) में कही गयी है।

परमात्मा का तेज विशेष रूप में जब किसी पदार्थ अथवा प्राणी में आता है तो वह अवतार कहाता है।

अवतार चेतन तत्त्व भी होते हैं और अचेतन तत्त्व भी। चेतन-अचेतन का अन्तर है 'ईक्षण' करने की शक्ति में।

ईक्षण से अभिप्राय है कार्य करने का स्थान, काल और दिशा का निश्चय करना। जो ऐसा करने की सामर्थ्य रखता है उसे चेतन कहते हैं। जो नहीं रखता वह अचेतन कहाता है।

कुछ प्राकृतिक पदार्थ भी विशेष ओजयुक्त, ऐश्वर्यवान् और सामर्थ्यवान् देखे जाते हैं। वे भी अवतार की श्रेणी में आते हैं और फिर कुछ प्राणी भी इसी प्रकार से विशेष ओजयुक्त, ऐश्वर्यवान् और सामर्थ्यवान् देखे जाते हैं। उन्हें भी अवतार माना जाता है। यही पुराणों की पद्धति है। दोनों में अन्तर भी वहाँ स्पष्ट है। अचेतन अवतार एक कार्य के लिए ही होते हैं और उस कार्य के उपरान्त उनका अस्तित्व नहीं रहता। अचेतन अवतार इच्छानुसार अनेक कार्य करता है।

हमारे इस कथन में भी भगवद्गीता का ही प्रमाण है। परमात्मा की विशेष विभूति से युक्त पदार्थों की गणना वहाँ की गई है। उस गणना में जहाँ राम और कार्तिकेय का कथन है, वहाँ उसमें वज्र और हिमालय का नाम भी है। जहाँ बृहस्पति भृगु को परमात्मा की विशेष विभूतिवाला माना है, वहाँ अक्षरों में ओं और समासों में द्वन्द्व को भी बताया है। इस प्रकार किसी भी पदार्थ को, जिसमें परमात्मा के तेज का विशेष अंश है, उसे परमात्मा का अवतार माना है।

अवतार परमात्मा स्वयं नहीं हो सकता। कृष्ण स्वयं परमात्मा नहीं थे। राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी परमात्मा नहीं थे। इसी प्रकार बुद्ध तथा अन्य अवतार परमात्मा नहीं कहे जा सकते। ये केवल परमात्मा के तेज (प्राण) की विशेष मात्रा को रखनेवाले होते हैं।

अतः पुराणों में वंशों का चरित् (वंशानुचरितं) से अभिप्राय है कि इन अवतारों और उनसे सम्पन्न होनेवाली घटनाओं का वर्णन।

अतएव भूमण्डल के इतिहास से अभिप्राय है अवतारों का इतिहास।

जन-साधारण की गाथाएँ भी पुराणों में हैं। परन्तु इतने लम्बे (३९ लाख वर्ष) काल का इतिहास लिखने में केवल विशेष विभूतियुक्त पदार्थों(अवतारों) का वर्णन ही किया जा सकता था।

इन अवतारों का इतिहास यदि वर्णन कर दिया जाए तो भूमण्डल, विशेष रूप में भारतवर्ष का पूर्ण इतिहास उसमें आ जाता है।

इस पुस्तक में हमारा सम्बन्ध केवल उस काल के इतिहास से है जिसे वैदिक काल कहते हैं। हमने इसमें अपना मत बताया है कि वैदिक काल हम उस काल को मानते हैं जब मानव समाज की भाषा वही थी, जो वेद की भाषा है।

दूसरे शब्दों में, जब वेद भाषा और राष्ट्री एक ही थीं, उस समय वेद समझने में अधिक कठिनाई नहीं होती थी।

: ४ :

वेद और वैदिक काल का आरम्भ

इस पुस्तक में वैदिक काल से हमारा अभिप्राय उस काल से नहीं जब सब मनुष्य भले, धर्मपरायण और परस्पर सहानुभूति रखनेवाले थे। वैदिक काल में भी अच्छे-बुरे लोग रहते थे। दूसरे शब्दों में, वैदिक काल का यह अभिप्राय नहीं कि उस काल के सब लोग वेद-धर्म को माननेवाले थे। हमारे ज्ञान में ऐसा कोई भी काल नहीं रहा, न कभी रहेगा, जब बुराई शून्य हो गई हो अथवा शून्य हो जाएगी।

यह ठीक है कि महाभारत में कहा है कि एक समय ऐसा था जब—

न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्॥
पाल्यमानास्तथन्योन्यं नरा धर्मेण भारत।
खेदं परमुपाजग्मुस्ततस्तान् मोह आविशत्॥

—महाभारत शान्ति० ५९-१४,१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिकाल में न कोई राज्य था, न राजा। न दण्ड था, न दण्ड देनेवाला था। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

सब मनुष्य धर्म के द्वारा परस्पर पालित और पोषित होते थे। कुछ दिनों के उपरान्त सब लोग पारस्परिक संरक्षण के कार्य में महान् कष्ट अनुभव करने लगे। फिर उन सब पर मोह छा गया।

यह अवस्था किसी समय थी; परन्तु इसका सम्बन्ध वेद भाषा समझने अथवा न समझने के साथ नहीं है। वेद को समझकर भी उस पर कोई आचरण करता है अथवा नहीं करता, पृथक् बात है। हम समझते हैं कि महाभारत का उक्त कथन उस काल के साथ सम्बन्ध रखता है जब जनसंख्या कम थी और वनों में कन्द-मूल-फल प्रचुर मात्रा में थे जो भोजन के लिए प्रयुक्त हो सकते थे।

जब मैथुनीय सृष्टि होने लगी तो जनसंख्या में वृद्धि होने लगी और प्रकृति में अनायास उपलब्ध भोजनादि सुविधा के साधन कम पड़ने लगे। तब धर्म से परस्पर व्यवहार में कठिनाई उपस्थित हो गई। उस समय दुर्बलात्मा छीना-झपटी करने लगे।

इस पर भी हमारा विचार है कि वेद की शिक्षा को समझकर उस पर आचरण करनेवाले सुख अनुभव करते थे।

अतः वेद प्रेरणा का स्रोत थे। जब तक आवश्यकता की वस्तुएँ अनायास प्राप्त होती रहीं, तब तक मनुष्य परस्पर प्रेमपूर्वक रहते रहे।

परन्तु जब जीवनोपयोगी वस्तुओं में कमी पड़ने लगी तब उन वस्तुओं को उपलब्ध करने में परिश्रम करना पड़ा होगा।

परिश्रम सब समान रूप में नहीं कर सकते। इस कारण वेद का उपदेश होने पर भी मनुष्य अपने और पराये के भेदभाव में पड़ गये। फिर जीवन-संघर्ष चला। इससे छीना-झपटी आरम्भ हो गयी।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि वेद का उपदेश वर्षा के समान है। सबको समान रूप में प्राप्त होता था परन्तु जैसा जिसका मन और बुद्धि होती थी, वैसा ही उसका आचरण हो जाता था।

वेद, प्रेरणा तथा ज्ञान का स्रोत थे और उस ज्ञान और प्रेरणा से लाभ वे ही उठा सकते थे जो पूर्व कल्प के अन्त के समय धर्मयुक्त व्यवहार रखते हुए समाप्त हुए थे। वे जब वर्तमान कल्प में अमैथुनीय सृष्टि में अथवा मानव माता-पिता से उत्पन्न हुए तो धुर्मयुक्त व्यवहार से श्रेष्ठ मन और बुद्धि के स्वामी बने। मन ज्ञान को प्राप्त करने का स्थान है और बुद्धि उस ज्ञान से कार्य करने का ढंग बतानेवाला यंत्र है। ये दोनों पूर्वजन्म के कर्मों से मिलते हैं।

आदि युग में जो पूर्व-कल्प के धर्मात्मा जीव थे, वे श्रेष्ठ मन और बुद्धि पा गये। साथ ही जो हीन कर्मा थे, वे हीन मन और हीन बुद्धियुक्त हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सृष्टि में जीवन-साधन सुलभ होने से हीन मनवालों के लिए भी अवसर था कि वे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।

कठिनाई तब उपस्थित हुई जब प्रकृति में सबके लिए जीवनोपयोगी पदार्थ पर्याप्त नहीं रहे।

श्रेष्ठ मन और बुद्धि रखनेवाले अपने जीवन-यापन के लिए बुद्धियुक्त परिश्रम कर जीवन चलाने लगे। परन्तु जो परिश्रम में बुद्धि का समावेश नहीं कर सके, वे कठिनाई अनुभव करने लगे। महाभारत में यही कहा है कि वे परस्पर संरक्षण में कठिनाई अनुभव करने लगे।

तब संघर्ष का जीवन आरम्भ हुआ। इसका वेद की शिक्षा से इतना ही सम्बन्ध है जैसे सब स्थानों पर वर्षा एक समान पड़ती हो, परन्तु परिश्रमी वर्षा का लाभ उठाते हैं, और प्रमादी सोये रहते हैं और उनके लिए वर्षा निरर्थक हो जाती है।

अतएव उस काल में भी जब वेदार्थ समझने में कठिनाई नहीं थी, तब भी भले-बुरे, बुद्धिमान और मूर्ख, परिश्रमी और आलसी दोनों प्रकार के लोग थे। और जो हीन बुद्धि और मन रखते थे, वे बुद्धिमानों को सहज जीवन चलाते देख छीना-झपटी करने लगे। आदि सृष्टि से कब तक मनुष्य-जीवन सुगमता से चलता रहा, कहना कठिन है। फिर भी काल लाखों नहीं तो सहस्रों वर्ष का अवश्य रहा होगा। बहुत ही न्यून संख्या में अमैथुनीय सृष्टि के जीवों से सृष्टि-रचना चली थी। उन थोड़े से अमैथुनीय जीवों में भी कई थे जो विवाह करके सन्तान उत्पन्न करने में रुचि नहीं रखते थे।

यूरोपियन इतिहासकारों द्वारा लिखे गये इतिहास और भारतीयों द्वारा लिखे इतिहास में यही अन्तर है। यूरोपियन इतिहासकार यह मानते हैं कि मनुष्य एक पशु समान जन्तु से विकसित हुआ है। भारतीय इतिहास शास्त्र यह बताता है कि प्रथम मनुष्य अति श्रेष्ठ विचार और बुद्धि का स्वामी था। उनमें से भी बहुत से थे जो सन्तानोत्पत्ति में रुचि नहीं रखते थे। विष्णु पुराण में कहा है—

यदास्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्धन्त धीमतः।
अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत्॥
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं यथा।
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान्॥

—विष्णु पुराण १-७-४,५

अर्थ है—जब बुद्धिमान प्रजापति के पुत्र-पौत्र की क्रम से वृद्धि नहीं हुई तो प्रजापति भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरस, मरीचि, दक्ष, अत्रि वसिष्ठ—अपने ही सदृश—मानस-पुत्रों को उत्पन्न किया।

इसका अभिप्राय यह है कि प्राकृतिक शक्तियों से जब रचना होने लगी तो पहले जो उत्पन्न हुए वे सृष्टि में वृद्धि नहीं कर सके। तदनन्तर ब्रह्मा ने न केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने जैसी सृजन-शक्तिवाले भृगु इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये प्रत्युत उन्हें मानस-पुत्र अर्थात् शिक्षा-दीक्षा से युक्त भी बनाया और उन्होंने सन्तान उत्पन्न की।

कई ऋषियों ने भी सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा नहीं की। इसी पुराण में कहा है—

सनन्दनादयो ये च पूर्वसृष्टास्तु वेधसा।
न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते।
सर्वे तेऽभ्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः॥

—विष्णुपुराण १-७-८,९

अर्थात्—ब्रह्मा जी ने पहले जिन सनन्दनादिकों को उत्पन्न किया था, वे सभी ज्ञान सम्पन्न, विरक्त और मत्सरादि दोषों से रहित थे। वे संसार-रचना से उदासीन थे। तब ब्रह्मा जी ने पुरुष-स्त्री का पृथक्-पृथक् सृजन किया।

इस अलंकारिक वर्णन को समझाने के लिए ब्रह्मा का अर्थ समझना चाहिए। ब्रह्मा प्रजापति को कहते हैं। प्रजापति के विषय में शतपथ ब्राह्मण में जो वर्णन मिलता है वह हम नीचे दे रहे हैं।

: ५ :

ब्रह्मा अर्थात् प्रजापति

शतपथ ब्राह्मण के षष्ठ काण्ड के प्रथम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में प्रजापति की उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित है—

पहले सब असत्(अव्यक्त) ही था। वह असत् क्या था? असत् ऋषि ही थे। अव्यक्त रूप परमाणु थे। उनको ही ऋषि कहा है। वे ऋषि कौन थे? वे प्राण थे। इन्होंने पहले इस सृष्टि को चाहा (परमाणुओं ने ही सृष्टि-रचना चाही)।

प्राण मध्य में इन्द्र है। (परमाणुओं के मध्य में त्रिगुणात्मक शक्ति को ही इन्द्र कहा है।) इन्द्र ने अपने पराक्रम से प्राणों को दीप्त किया (सक्रिय किया)। इन्द्र छिपा बैठा था। दीप्त हुए प्राणों ने सात पुरुष बनाये।

उन्होंने (ऋषियों अर्थात् परमाणुओं ने) कहा, 'इस प्रकार हम सृष्टि-रचना नहीं कर सकेंगे। तब सात पुरुष मिलकर एक हो गये और एक पुरुष बना।

—शतपथ ब्रा० ६-१-१-१,२,३,४,५,६,७

यह पुरुष प्रजापति हुआ। आगे कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत। भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स। तपोऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्या, सै वास्मै प्रतिष्ठाऽभवत्तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति तस्मादनूच्य प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठा ह्येषा यद्ब्रह्म तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत॥ —शतपथ ब्रा० ६-१-१-८

अर्थ हैं—इस प्रजापति ने चाहा, 'मैं बहुत हो जाऊँ, मैं प्रजा को उत्पन्न करूं।' उसने श्रम किया। उसने तप किया। उसने श्रान्त और तप्त होकर ब्रह्मा अर्थात् त्रयी विद्या (वेद) को उत्पन्न किया। वही उसकी प्रतिष्ठा (आधार) हुई। इसलिए कहते हैं इस सब (संसार) का आधार ब्रह्मा (प्रजापति ब्रह्माण्ड) है। इससे मनुष्य प्रतिष्ठित होता है। इससे प्रतिष्ठित हो उसने तप (परिश्रम) किया है।

इस ब्राह्मण का अभिप्राय है कि प्रकृति के परमाणुओं की त्रिगुणात्मक शक्ति से यह जगत् बना है और वह जगत् के बनानेवाला तत्त्व प्राण है जो पहले सात रूपों में था और फिर एक होकर रचना-कार्य करता रहा है। यह पुरुष प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा है।

अर्थात् जगत् को बनानेवाली (त्रिगुणात्मक) शक्ति ही ब्रह्मा है। वह चार वेदों को बोलती है। इसी कारण पुराण में कहा है कि ब्रह्मा के चारों मुखों से चार वेद स्रवित हो रहे हैं।

अलंकार रूप में ब्रह्मा को चार मुखवाला वर्णन करके कहा है कि उसके मुख से वेद निकल रहे हैं। ब्रह्मा का अर्थ मनुस्मृति में इस प्रकार लिखा है—

यत्तत्कारामव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥ —मनु० १-११

(वह जो अत्यन्त प्रसिद्ध, सबका कारण, सत्-असत् रूपवाला है, उससे उत्पन्न पुरुष लोक में ब्रह्मा कहा जाता है।)

प्रसिद्ध प्रकृति है जो दो रूपों में पायी जाती है। सत् (व्यक्त) और असत् (अव्यक्त) रूप में। इस प्रकृति से जो पुरुष उत्पन्न हुआ, वह ब्रह्मा है।

यहाँ पुरुष से अभिप्राय शक्तिमान् तत्त्व है।

दूसरे शब्दों में ब्रह्मा, जैसे शतपथ ब्राह्मण में कहा है, त्रिगुणात्मक शक्ति है जो परमाणु के भीतर विद्यमान है और जो इस पूर्ण संसार के रचने में कारण है।

पुराणों ने इसे चार मुखवाला, मनुष्य की रूप राशियुक्त शरीरधारी बना दिया है। यह आलंकारिक वर्णन है। यह इसी प्रकार है जैसे कोई चतुर कार्टूनिस्ट वायसराय को लोमड़ी के रूप में चित्रित कर देता है।

ब्रह्मा और कमल के विषय में महाभारत में इस प्रकार वर्णन मिलता है—

मानसो नाम विख्यातः श्रुतपूर्वो महर्षिभिः।
अनादिनिधनो देवस्तथाभेद्योऽजरामरः॥

—महाभारत शान्ति० १८२-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षियों ने सुना था कि पहले एक मानस नाम का विख्यात पुरुष था। वह अनादि, अनन्त, अजर और अमर था।

यह परमात्मा के विषय में कहा है।

उससे आगे कहा है कि उस मानस देव ने पहले (प्रकृति से) महत् तत्त्व उत्पन्न किया। उससे पंच महाभूत उत्पन्न हुए।

—महाभारत शान्ति० १८२-१३,१४

जब यह हो गया तो—

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः॥
अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत्।
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पञ्च धातवः॥

—महाभारत शान्ति० १८२-१५,१६

तब उस तेजोमय स्वयंभुः (परमात्मा) ने एक पद्म (कमल) उत्पन्न किया और उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ जो वेदों की निधि था।

यह अहंकार नाम से भी विख्यात है, जिससे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। जो सब पदार्थों और भूतों को बनानेवाला है।

अतः महाभारत में भी, मनुस्मृति की भाँति, निर्माणाधीन जगत् के बनानेवाले को ब्रह्मा कहा है।

यह सब हमने इस कारण लिखा है कि पुराणों के एकरूप होने का कुछ परिचय दे दिया जाए। हमने यह बताया है कि सृष्टि-रचना की चमत्कारक घटना का वर्णन पुराण ग्रन्थों में अलंकार के रूप में किया गया है। इन अलंकारों को न समझते हुए कुछ लोग पुराणों को गल्प समझते हैं।

कुछ भी हो, पुराणों में जो इतिहास अंश है, वह सत्य ही प्रतीत होता है। पुराणों में पाँच विषय वर्णित किये हैं। उनमें एक विषय इतिहास भी है।

पुराण उस काल के इतिहास का वर्णन करते हैं जिस काल का अन्य कहीं इतिहास नहीं मिलता। हमारा अभिप्राय है जब अमैथुनीय सृष्टि हुई।

हम यह बता चुके हैं कि जिस समय मनुष्य का निर्माण हुआ, उसी समय वेद जो पहले ही ऊर्जा की तरंगों में उच्चारित हो रहे थे, ऋषियों ने सुने और मनुष्यों को बताये।

इससे यह स्पष्ट है कि उस समय वेद की भाषा और मानवी भाषा अर्थात् राष्ट्री एक ही थी। दूसरे शब्दों में, वैदिक काल मानव-सृष्टि के आरम्भ से ही कहा जाता है।

जो वैदिक काल भारतीय भवन द्वारा प्रकाशित 'वैदिक एज' नामक ग्रन्थ में वर्णित है, उसे हम कोरी गप्प मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ६ :

आदि वैदिक काल का कुछ वर्णन

सृष्टि-रचना में मनुष्य-रचना का वर्णन ही वेदों में मिलता है। रचे गये मनुष्यों ने कैसे जीवन आरम्भ किया, उसका वर्णन नहीं है। यह इतिहास (पुराणों) का विषय है। महाभागवत् पुराण में लिखा है—

विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशितं तपः।
आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः॥

—श्रीमद् भागवत० ३-१०-४

अर्थ है—परमात्मा जो अजन्मा है, उसके कहे अनुसार (ब्रह्मा ने) आत्मा को परमात्मा में लगाकर एक सौ देव वर्ष तक तप किया।

एक देव वर्ष मनुष्य वर्ष से ३६० गुणा बड़ा होता है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि ३६,००० मानव वर्ष पर्यन्त सृष्टि बनाने के लिए जगत् की शक्तियाँ (ब्रह्मा) तैयारी करती रहीं।

अगले श्लोक में लिखा है कि ब्रह्मा ने इस काल में वायु के साथ जल (आपः —अहंकारों) को भी लिया। वायु का अभिप्राय है गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति। इस प्रक्रिया को वैज्ञानिक भाषा में कहा जाए तो यह होगा कि अहंकार (इलैक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन) गतिशील होकर परिमण्डल (ऐटम) के रूप में आ गये। (वायु गति का सूचक है, यह हम ऊपर बता चुके हैं।) और आपः अहंकारों (एटोमिक पार्टीकल्स) को कहते हैं। तब ब्रह्मा ने भूः, भुवः, स्वः (उस कमल के) तीन भाग किये।

—महाभा० पु० ३-१०-८

जब रचना-कार्य आरम्भ हुआ तो काल की गणना आरम्भ हुई। आगे कहा है—

रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः।
सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः॥
वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः।
उत्स्रोतसस्तमः प्राया अन्तः स्पर्शा विशेषिणः॥
तिरश्चामष्टमः सर्गः सौऽष्टाविंशद्विधो मतः।
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः॥

—महाभा० पु० ३-१०-१८,१९,२०

अर्थ है—यह लीला (जगत्-रचना) सब दुःखों का हरण करनेवाले परमात्मा की ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छः प्रकार की प्राकृतिक सृष्टियों को उत्पन्न करने के उपरान्त छः प्रकार के स्थावर वृक्षों की सृष्टि का वर्णन है।)

वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और दम उत्पन्न किये। इनका संचार नीचे से ऊपर को होता है। ये भीतर-ही-भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं।

आठवीं सृष्टि तिर्यग् योनियों (पशु-पक्षियों) की है। वह अट्ठाईस प्रकार की मानी जाती है। इन्हें काल का ज्ञान नहीं होता। (तमोगुण के आधिक्य के कारण) ये अज्ञानी इन्द्रियों के विषय को ही जानते हैं। इसके हृदय (मन) और इनकी विचार-शक्ति (बुद्धि) नहीं होती।

आगे कहा है—

अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम्।
रजोऽधिकाः कर्म परा दुःखे च सुखमानिनः॥

—महाभा० पु० ३-१०-२५

अर्थ है—नवीं प्रकार की सृष्टि मनुष्य की है। मनुष्य रजोगुण प्रधान होता है। इस कारण कर्म-परायण है और सुख-दुःख अनुभव करता है।

मनुष्य-सृष्टि के विषय में महाभारत में कहा है—

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य पुलहः क्रतुः॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात् तु इमाः प्रजाः।
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश॥

—महाभारत आदि० ६५-१०,११

अर्थ है—ब्रह्मा जी के छः महर्षि मानस-पुत्र कहे जाते हैं। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु।

मरीचि के पुत्र कश्यप थे और कश्यप का विवाह दक्ष की तेरह कन्याओं से हो गया। और इनसे बहुत सन्तान हुई। जो छः मानस-पुत्र कहे हैं, वे अमैथुनीय सृष्टि के थे। इसी कारण उनको ब्रह्मा के पुत्र (प्राकृतिक शक्तियों से उत्पन्न) कहा है।

विष्णु पुराण में ब्रह्मा के नौ पुत्र कहे हैं। भृगु, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ।

वैसे महाभारत में भी यही लिखा है कि दक्ष की कन्याओं से मरीचि के पुत्र कश्यप का विवाह हुआ था। इसका अभिप्राय यह है कि मरीचि की पत्नी और कश्यप की माँ भी तो कहीं से पैदा हुई होगी। और दक्ष का भी उल्लेख है।

इस कथन-भेद में एक बात विशेष समझने की है। महाभारत में छः को महर्षि कहा है। दक्ष और वसिष्ठ इत्यादि को मानस-पुत्र कहा है, परन्तु महर्षि नहीं कहा। मानस-पुत्र का अभिप्राय है, जो मनुष्य योनि में बुद्धि रखनेवाले थे परन्तु महर्षियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अभिप्राय है कि वे जो वेद-ज्ञान को प्राप्त कर रहे थे और वह वेद-ज्ञान दूसरों को देते थे।

जो महर्षि नहीं थे, वे वेद-ज्ञान को प्राप्त करनेवाले नहीं थे।

वैसे नारद को भी ब्रह्मा का मानस-पुत्र कहा है। वह महर्षि नहीं था।

एक बात निर्विवाद है कि महर्षि-गण वेद के उच्चारण हो रहे छंद सुन रहे थे। वे छंद (ब्रह्माण्ड की प्राकृतिक शक्तियों से) उच्चारित किये जा रहे थे। महर्षिगण उन वेद-मन्त्रों को अपने मन में अनुभव करते थे। फिर अमैथुनीय और मैथुनीय, दोनों प्रकार की सृष्टि को राष्ट्री भाषा में बताते थे।

यह वैदिक काल था। इस समय, जैसाकि हम पहले भी बता चुके हैं, वेद की भाषा और जन-साधारण की भाषा एक ही थी।

वेद की भाषा से हमारा अभिप्राय वह भाषा नहीं है जिनमें वेद-ज्ञान महर्षि अपने मन में अनुभव करते थे। वरन् वह भाषा जिसमें वे जनसाधारण को वेद समझाते थे। यह राष्ट्री भाषा महर्षियों और अन्य सृजन हुए मनुष्यों की एक ही थी।

मनुष्य से पहले कीट-पतंग, पशु-पक्षी इत्यादि सब इतर् जीव-जन्तु उत्पन्न हो चुके थे।

मनुष्य अपने शरीर का प्रयोग तो उन जन्तुओं को देखकर सीखा था। आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन, ये शरीर के कार्य हैं और इनमें पशुओं के समान होने से वैसे ही सीख जाता है जैसे पशु स्वभाववश सीख जाते हैं।

मनुष्य में मन और बुद्धि पशुओं से विलक्षण है। इनके विषय में ही मनुष्य को किसी दूसरे से शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। आदि सृष्टि में यह महर्षियों ने मानवों को दी।

परन्तु क्या केवल सिखाने मात्र से कोई सीख सकता है? सिखानेवाले तो महर्षि थे, परन्तु सीखनेवाले सब मनुष्य मन, बुद्धि की समान सामर्थ्य नहीं रखते थे। अर्थात् सबके मन और बुद्धि समान रूप में सबल नहीं थे। अतः महर्षियों के सिखाने पर भी वे समान रूप में सीख नहीं सके।

इसका परिणाम यह हुआ कि जब वेद-ज्ञान जन-जन की भाषा में था उस काल में भी सब मनुष्य समान रूप में इस ज्ञान को ग्रहण नहीं कर सके।

अतः उस युग में भी मनुष्य मनुष्य के व्यवहार में भेद दिखाई देता है।

दक्ष की तेरह लड़कियों के नाम, कश्यप से जिनका विवाह हुआ था, इस प्रकार हैं—

(१) अदिति, (२) दिति, (३) दनु, (४) काला, (५) दनायु, (६) सिंहिका, (७) क्रोधा, (८) प्राधा, (९) विश्वो, (१०) विनता, (११) कपिला, (१२) मुनि, (१३) कद्रु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्यप से अदिति के बारह पुत्र हुए। उनके नाम हैं—

(१) धाता, (२) मित्र, (३) अर्यमा, (४) इन्द्र, (५) वरुण, (६) अंश, (७) भग, (८) विवस्वान्, (९) पूषा, (१०) सविता, (११) त्वष्टा, (१२) विष्णु।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए कि ये सब नाम वेद में से ही लिये गये हैं। इन्द्र, वरुण, अर्यमा, मित्र इत्यादि और दिति, दनु, काल इत्यादि भी।

ये नाम वैदिक शब्द हैं। इस पर भी वे शब्द वेद में अपने अर्थ रखते हैं और रचित मानव-सृष्टि में ये अपना पृथक् अर्थ रखते हैं।

हमारा मत है कि जब मानव-सृष्टि अधिक होने लगी तो नाम रखने आवश्यक थे और जो शब्द उस समय उपलब्ध थे, वही उन मानवों के परिचय के लिए प्रयुक्त होने लगे थे। अतः मनुष्य-सन्तान जब वृद्धि पाने लगी, तो वैदिक शब्दों में से ही इन्द्र, वरुण इत्यादि उनके नाम रख दिए गये।

अतः ये इन्द्र वरुणादि प्राकृतिक दिव्य गुणयुक्त पदार्थ पृथक् हैं और इन नामों-वाले मानव पृथक् हैं। एक-दूसरे से इनको पृथक्-पृथक् ही समझना चाहिए।

यहाँ यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि अदिति और कश्यप के पुत्रों को आदित्य कहा है। और वेद में आये इन्द्र वरुणादि देवताओं की भाँति कश्यप संतान आदित्यों को भी देवता कहा जाने लगा है। हम समझते हैं कि इससे ही भारी विभ्रम फैला है।

इन्द्र, विष्णु इत्यादि प्राकृतिक देवता सृष्टि-रचना क्रम में आये हैं। उदाहरण के रूप में वेद में इन्द्र को कहा है कि वह मनस्वान प्रथम उत्पन्न हुआ (ऋ० २-१२-१) और यहाँ इन्द्र अदिति का पहला पुत्र नहीं वरन् चौथा पुत्र है।

अतएव हमारा यह निश्चित मत है कि ये धाता मित्रादि मनुष्य थे और वेदों में लिखित मित्र, वरुण इत्यदि प्राकृतिक शक्तियों के नाम हैं।

यह भी स्पष्ट ही है कि उस आदिकाल में भी सबके-सब धर्मात्मा जीव ही नहीं थे। उदाहरण के रूप में अदिति की छोटी बहन दिति का एक पुत्र हिरण्यकशिपु के नाम से विख्यात हुआ। वह दिति का पुत्र होने से दैत्य कहाया। अदिति के पुत्र आदित्य थे।

विष्णु पुराण में कहा है—

दितेः पुत्रो महावीर्यो हिरण्यकशिपुः पुरा।
त्रैलोक्यं वशमानिन्ये ब्रह्मणो वरदर्पितः॥
इन्द्रत्वमकरोद्दैत्यः स चासीत्सविता स्वयम्।
वायुरग्निरपां नाथः सोमश्चाभूम्महासुरः॥
धनानामधिपः सोऽभूत्स एवासीत्स्वयं यमः।
यज्ञभागानशेषांस्तु स स्वयं बुभुजेऽसुरः॥

—विष्णु पु० १-१७-२, ३, ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ हैं—पूर्व काल में दिति का पुत्र महाबली हिरण्यकशिपु ब्रह्मा (प्राकृतिक शक्तियों) से वर (लाभ) प्राप्त कर अभिमानी हो गया और त्रिलोकी (वायुचर, स्थलचर और जलचर) को वश में कर (उसका भोग करने लगा) अर्थात् इन तीनों में सबको अपने भोग में प्रयोग करने लगा।

वह दैत्य (दिति का पुत्र) इन्द्र-पद (सबका शासका) बन सबका भोग करता था। वह महान् असुर (इन्द्रियों के अधीन कार्य करनेवाला) सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण आदि (इन प्राकृतिक शक्तियों) का स्वामी बन गया था। वह धनी (प्राकृतिक पदार्थों) का स्वामी बन गया। यमराज (मनुष्यों पर नियन्त्रण करनेवाला) बन गया। वह असुर (ईश्वर को न माननेवाला) यज्ञ (दूसरे के परिश्रम) को स्वयं भोग करता था।

हमने शब्दों के भावार्थ कोष्ठकों में लिखे हैं। कुछ नासमझ लोगों ने इनके किसी प्रकार के अनहोने अर्थ लगाये हैं।

असुर की व्याख्या भगवद्गीता में कही है—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥

—भ० गीता १६-८, ९

अर्थ है—वे (असुर प्रकृति के लोग) कहते हैं कि जगत् आश्रयरहित (स्वयं उत्पन्न) है और मिथ्या है। इसको बनानेवाला कोई नहीं। परस्पर वस्तुओं के संयोग से ही बन गया है। इसलिए यह (जगत्) भोगों को भोगने के लिए ही है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।

इस मिथ्या ज्ञान को आधार बनाकर जिनकी आत्मा नष्ट (हीन) हो गयी है, जिनकी बुद्धि मन्द हो गयी है, जो सबका अहित करनेवाले हैं, ऐसे क्रूर कर्मवाले संसार का नाश करने के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

ऐसे गुणोंवाला ही हिरण्यकशिपु था।

उसके दुभाग्य से उसकी पत्नी किसी आस्तिक की लड़की थी। जब प्रह्लाद उसके गर्भ में था तो वह नारद के आश्रम में कीर्तन (भगवत् कथा) सुनने जाती थी। उस समय उसका पति हिरण्यकशिपु शक्ति अर्जन करने के लिए तपस्या (परिश्रम) कर रहा था।

प्रह्लाद जब बड़ा हुआ तो गर्भावस्था अथवा पूर्वजन्म के संस्कारों से उसे अपने पिता के कर्मों के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी। वह एक दिन अपने गुरु को साथ लेकर अपने पिता के पास पहुँचा और कहने लगा, इस जगत् का एक अक्षर अनादि कर्त्ता है। वह सबके कर्मों का फल देनेवाला है। इस कारण उसका स्मरण करिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र के मुख से यह सुनकर हिरण्यकशिपु को क्रोध आ गया। वह प्रह्लाद के गुरु को डाँटने लगा।

प्रह्लाद ने कहा कि यह मुझे गुरुजी ने नहीं सिखाया। यह मेरा अन्तरात्मा कह रहा है कि आप मिथ्याचरण कर रहे हैं।

अपने पुत्र को अपने विचारों के विपरीत प्रचार करते देख हिरण्यकशिपु उसको कष्ट देने लगा। इस कष्ट की सूचना लोक में विख्यात होने लगी तो दैत्यों के गुरु (शुक्राचार्य) के पुत्र ने हिरण्यकशिपु को समझाया—

राजन्नियम्यतां कोपो बालेऽपि तनये निजे।
कोपो देवनिकायेषु तेषु ते सफलो यतः॥
तथातथैनं बालं ते शासितारो वयं नृप।
तथा विपक्षनाशाय विनीतस्ते भविष्यति॥

—श्रीविष्णु० पुराण १-१७-४६,५०

अर्थ है—राजन्! आप इस बालक के प्रति अपना क्रोध शान्त करिए। क्रोध तो आदित्यों पर करना चाहिए। इसकी सफलता तो वही हैं। जब आदित्य नष्ट हो जाएँगे तब यह स्वयं विनीत हो जाएगा।

गुरुजी के इस कथन पर हिरण्यकशिपु ने बालक को कुछ नहीं कहा।

इस कथानक से यह प्रतीत होता है कि प्रह्लाद के मन पर अदिति के पुत्रों का प्रभाव था।

प्रह्लाद ने अन्य दैत्यों को अपने पिता के विपरीत समझाना आरम्भ कर दिया। वह उनको आस्तिकवाद की शिक्षा देने लगा। वह अन्य बालकों को कहने लगा—

श्रूयतां परमार्थो मे दैतेया दितिजात्मजाः।
न चान्यथैतन्मन्तव्यं नात्र लोभादिकारणम्॥
जन्म बाल्यं ततः सर्वो जन्तुः प्राप्नोति यौवनम्।
अव्याहतैव भवति ततोऽनुदिवसं जरा॥
ततश्च मृत्युमभ्येति जन्तुर्दैत्येश्वरात्मजाः।
प्रत्यक्षं दृश्यते चैतदस्माकं भवतां तथा॥
मृतस्य च पुनर्जन्म भवत्येतच्च नान्यथा।
आगमोऽयं तथा यच्च नोपादानं विनोद्भवः॥

—श्रीविष्णु० १-१७-५५,५६,५७,५८

अर्थ है—हे भाइयो! मैं तुमको परमार्थ (बहुत लाभ) की बातें बताता हूँ। इसे छोटी मत समझो। मैं तुम्हें कुछ भी स्वार्थ की बात नहीं कह रहा।

सभी जीव बाल्यावस्था, यौवन और फिर दिन-दिन वृद्धावस्था को प्राप्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर जीव मृत्यु को प्राप्त होता है, यह हम सब देखते हैं। मरने पर पुनः जन्म होता है। यह नियम भी कभी नहीं टलता। इस विषय में आगम (वेद) भी प्रमाण हैं। बिना उपादान के कोई वस्तु बनती नहीं।

इस प्रकार प्रह्लाद वेद में वर्णित जीवन-मीमांसा की शिक्षा देने लगा। हिरण्यकशिपु को भय लग गया कि उसकी मौसी के पुत्र उसके विपरीत षड्यन्त्र कर रहे हैं।

वास्तव में प्रह्लाद अपने पूर्वजन्म के कर्मों से प्रेरित यह सब कह रहा था।

पिता ने दिल कड़ा करके यह निश्चय किया कि पुत्र को मृत्यु-दण्ड दे। इसका समाचार, अदिति के पुत्रों को मिल गया और उनका सबसे छोटा भाई विष्णु जो अति वीर था, आया और उसने हिरण्यकशिपु को मार डाला।

विष्णु ने महान् पराक्रम का कार्य किया था। इस कारण वह नरसिंह कहाया। अर्थात् वह मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी था।

इस कथा को बताने के दो प्रयोजन हैं। एक यह कि यह काल भी वैदिक काल ही था। बालक प्रह्लाद भी कहता था कि वेदशास्त्र में परमात्मा के अस्तित्व की बात कही है।

इस कथा को कहने का हमारा दूसरा प्रयोजन यह है कि धर्म और अधर्म सब काल में रहा है। धर्म सर्वहिताय होता है और अधर्म स्व-हिताय।

: ७ :

आदि वैदिक काल

मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। मनुष्य से इतर जीव-जन्तु कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं। उनको जैसा-कैसा जीवनयापन करना पड़ता है, उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन का वे विचार नहीं कर सकते। इस कारण वे यम (परमात्मा की नियंत्रण शक्ति) के अधीन समझे जाते हैं।

मनुष्य के पथ-प्रदर्शन के लिए ही उसे वेद ज्ञान ईश्वरीय नियम से प्राप्त होता है। यह ज्ञान ऐसा नहीं जैसाकि गाय के गले में रस्सा डालकर ग्वाला उसे कहीं ले जाए। यह प्रेरणा रूप ही है। इसे मानना अथवा न मानना मनुष्य के अपने अधिकार में है परन्तु अपने स्वतन्त्रता से किए कर्म का फल वह भोगता है।

भगवद्गीता में कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।।

—भ० गीता ३-५

मनुष्य एक क्षण के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। वह प्रकृति (जिससे उसका संयोग हुआ है) के गुणों से विवश हो कर्म करता है।

यही वैदिक जीवन-मीमांसा है। साथ ही यह भी कहा है—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।

—भ० गीता २-४९

अर्थ है—बुद्धि के योग (सहाय) से किया कर्म अत्यन्त दूर है (सामान्य) कर्म से। अतः बुद्धि की शरण को ग्रहण करो क्योंकि फल से प्रेरित हो किया कर्म अत्यंत हीन है।

अभिप्राय यह है कि कर्म किए बिना कोई रह नहीं सकता। इस कारण सोच-विचारकर कर्म करे। फल (विषयों) की प्रेरणा से किया कर्म बहुत ही हीन फल-वाला होता है।

प्रह्लाद को पूर्वजन्म के संस्कारों के अधीन जन्म-मरण, कर्मफल की मीमांसा का ज्ञान हो गया। हिरण्यकशिपु के बाद वह राजा भी बना, परन्तु प्रेरणा का स्रोत अर्थात् वेद के विद्वानों को वह अपने देश में ला नहीं सका।

दैत्यों का पुरोहित शुक्राचार्य कहाता था। शुक्राचार्य पद का नाम है। यह किसी व्यक्ति का नाम नहीं। जो कर्म की महिमा को तो जानता है, परन्तु कर्म-अकर्म में भेद करने के लिए बुद्धि का प्रयोग नहीं कर सकता अथवा परमात्मा और उसके ज्ञान की प्रेरणा की अवहेलना करता है, ऐसा आचार्य मिथ्या पथ-प्रदर्शन ही करता है। ऐसे ही थे दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य।

परमात्मा ने मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करने के लिए उसे बुद्धि दी है। अतः कर्म अथवा कर्म बतानेवाले किसी भी ग्रन्थ की परख सदा बुद्धि से होती रहे तो मनुष्य भटक भी जाए परन्तु अन्त में मार्ग पा ही जाता है।

इसी कारण वेद के एक विद्वान् ने कहा है कि वेदार्थ भी तर्क से सिद्ध होने चाहिये। सदा अर्थों को तर्क की कसौटी पर कसते रहनेवाला कभी भूल भी करता है तो अपनी भूल को सुधारने का मार्ग खुला रखता है।

प्रह्लाद ने पिता के विरुद्ध विद्रोह तो किया परन्तु पिता को मिथ्या प्रेरणा देनेवाले शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाए रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रह्लाद का पुत्र विरोचन पुनः अनीश्वरवादी हो गया। विरोचन का लड़का बलि हुआ। बलि का पुत्र बाण था। बाण महान् असुर था। महाभारत में कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलेश्च प्रथितः पुत्रो बाणो नाम महासुरः।। —महाभारत आदि० ६५-२०

इसका कारण उनके संस्कार ही थे। कश्यप-दिति वंश को शुक्राचार्य गुरु मिल गये। शुक्राचार्य भौतिकवादी था। वह सब कुछ प्रकृति से ही, स्वभाववश उत्पन्न हुआ मानता था।

हिरण्यकशिपु शुक्राचार्य का शिष्य था जो नास्तिक और साथ ही दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति हुआ। अनीश्वरवादी अथवा वे ईश्वरवादी, जो दिखावे के लिए ही परमात्मा को मानते हैं, वे ही प्रकृति से दुष्ट हो सकते हैं।

फिर भी यह आवश्यक नहीं कि अनीश्वरवादी अधर्माचरण करनेवाला ही हो। यद्यपि परमात्मा को स्वीकार न करनेवाले जब वैभव सम्पन्न होते हैं तो कर्तव्या-कर्तव्य में भेद भूल जाते हैं। कारण यह है कि कर्तव्य का पालन करने में कुछ उद्देश्य नहीं रह जाता।

जब तक तो मनुष्य हीन और दीन रहता है, तब तक वह अपने से बलशाली सांसारिक जीवों से भयभीत दूसरों के साथ धर्मयुक्त व्यवहार रखता है परन्तु जब वह सांसारिक वैभव से युक्त हो स्वयं बलवान बन जाता है तब उसका अनीश्वर-वादी होना उसे उलटे मार्ग पर ले जाने में सफल हो जाता है।

यही बात हिरण्यकशिपु के साथ हुई थी। वह शक्ति से युक्त होकर जब प्रचंड बल का स्वामी हुआ तो फिर उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध करानेवाला कोई नहीं रहा। परमात्मा नहीं, तो वेद भी नहीं, वेद नहीं तो उसमें वर्णित श्रेष्ठ व्यवहार भी नहीं।

बलशाली होने पर परमात्मा तथा कर्मफल और पुनर्जन्म के ही विचार हैं जो मनुष्य को सन्मार्ग पर आरूढ़ रख सकते हैं।

यहाँ हम परमात्मा और पुनर्जन्म की विद्यमानता पर विचार नहीं कर रहे। इस विषय में हम पुस्तक के पूर्वांश में कह चुके हैं। यहाँ हमारा आशय यह है कि आस्तिक्य शक्तिशाली मनुष्यों को धर्मयुक्त मार्ग पर आरूढ़ रहने में सहायक होता है।

यही बात प्रह्लाद की सन्तान के साथ हुई थी। प्रह्लाद अपने पूर्वजन्म के कर्म-फलों से तथा गर्भावस्था में माँ से सुने नारद मुनि के उपदेशों से, परमात्मा पर अगाध विश्वास रखनेवाला हो गया था। प्रह्लाद की सन्तान विरोचन और बलि तो कुछ ठीक मार्गों पर चलते रहे परन्तु बाण पुनः नास्तिक हो गया।

विरोचन ने इन्द्र पर आक्रमण कर दिया था। इन्द्र आदित्यों का राजा था। इन्द्र ने विरोचन को अपने प्रासाद में घुसने तक नहीं दिया।

विरोचन के आक्रमण का कारण यह था कि लक्ष्मी जो दैत्यों की कन्या थी, दैत्यों का देश छोड़ आदित्यों के पास चली गयी थी। वहाँ उसका विवाह विष्णु से हो गया। इससे चिढ़कर विरोचन ने आदित्यों पर आक्रमण कर दिया। विरोचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजित हुआ तो शुक्राचार्य ने विरोचन और उसके पुत्र बलि को शक्ति संचय करने की राय दी।

बलि ने शक्ति संचय कर देवलोक पर आक्रमण कर दिया। तब तक आदित्य आलस्य एवं प्रमादवश दुर्बल हो चुके थे। इस कारण बलि के देवलोक पर आक्रमण करने के कारण इन्द्रादि आदित्यों को अपना देश छोड़कर भाग जाना पड़ा।

कहा जाता है कि बलि ने तीनों लोक में राज्य स्थापित कर उन लोगों का दोहन आरम्भ कर दिया था।

इसका अभिप्राय यह है कि समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ही उपजाऊ कार्य करते हैं और बलि ने समाज के इन तीनों वर्गों पर अपना आधिपत्य कर लिया था। इनका अर्जित पूर्ण धन लेकर वह यज्ञों में दान कर देता था।

आदित्यों में एक अति ओजस्वी और चतुर कुमार था वामन। उसने आदित्यों का राज्य बलि से वापस लेने के लिए एक योजना बनायी और बलि के यज्ञ में जा पहुँचा। उसके ओजस्वी स्वरूप को देख बलि प्रभावित हुआ। यज्ञ में वामन को दक्षिणा देने लगा तो वामन ने कहा कि वह धन-दौलत, रजत, स्वर्ण इत्यादि नहीं लेना चाहता। ये वस्तुएँ उसके उपयोग की नहीं हैं। वह तो तीन पग भूमि माँगता है।

यज्ञ में दान देने को वचनबद्ध जब बलि तैयार हुआ तो वामन ने तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की मुक्ति माँग ली। इसे ही पुराण में तीन पग भूमि कहा है। जैसे भूमि सब सम्पत्ति का उद्गम स्थान है, इसी प्रकार समाज का पूर्ण धन इन तीनों वर्णों की उपज ही है।

बलि इस दान के देने में हिचकिचाहट करने लगा परन्तु दिये वचन का उसने पालन किया और भूमण्डल के तीनों वर्ण स्वतन्त्र हो अपने कर्मों का स्वयं भोग करने लगे।

यह कथा भी आदि वैदिक काल की ही प्रतीत होती है। यह हम इस कारण कहते हैं कि कश्यप इत्यादि अमैथुनीय सृष्टि के जीव थे और बलि कश्यप की चौथी पीढ़ी में ही हुआ था। लगभग दो सौ वर्ष ही सृष्टि को हुए व्यतीत हुए होंगे। अतः हमारे विचार से तब तक वैदिक काल चल रहा था। फिर भी सब-के-सब लोग वेद विचार को स्वीकार नहीं करते थे। वामन ने भी दान माँगने में चतुराई का प्रयोग किया था। सामान्य भाषा में इसे छलना कहा जा सकता है।

हमारा इस वृत्तान्त को लिखने का अभिप्राय यह है कि वैदिक काल में भी मनुष्य वैदिक-शिक्षा को अस्वीकार करनेवाले हुए थे।

यह इस कारण कि मनुष्य कार्य करने में स्वतन्त्र है और कार्य पर नियन्त्रण बुद्धि द्वारा ही हो सकता है। पूर्वजन्म के कर्मफल से सबकी बुद्धि समान नहीं होती। अतः आदिकाल से ही दो प्रकार की प्रवृत्तियों के मनुष्य चले आते हैं—दैवी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसुरी। इसका वैदिक काल के होने अथवा न होने से सम्बन्ध नहीं है। धर्म का सम्बन्ध पूर्वजन्म के संस्कारों एवं इस जन्म की शिक्षा-दीक्षा से होता है।

वेदों की भाषा को जानने और वेदार्थ को ठीक समझने से आचरण के ठीक होने का सम्बन्ध नहीं है। आचरण तो संस्कारों के अधीन चलता है।

: ८ :

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र इत्यादि

हम ब्रह्मा के विषय में लिख चुके हैं। ब्रह्मा परमात्मा की रचना-शक्ति को कहा है। परन्तु ब्रह्मा के यह अर्थ तो सृष्टि-रचना प्रकरण में थे।

किन्तु जब मानव इतिहास में ब्रह्मा का नाम आता है तो इसका अभिप्राय परमात्मा की कर्तृत्व-शक्ति से नहीं माना जाता।

इसी प्रकार हम यह भी बता चुके हैं कि इन्द्र, विष्णु इत्यादि प्राकृतिक शक्तियाँ हैं। उदाहरण के रूप में वेद में विष्णु का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे ॥

—ऋ० १-२२-१७

निरुक्ताचार्य यहाँ विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करता है—

अथ यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा। व्यश्नोतेर्वा। तस्येषा भवति।

—नि० १२.१८

ऊपर दिये ऋग्वेद के मन्त्र का अर्थ है—(इदम्) इस (जगत्) को। (विष्णुः) विष्णु से (व्यापक परमेश्वर से)। (त्रेधा) तीन प्रकार से। (वि चक्रमे) विशेष चक्र से। (निदधे पदम्) इस संसार में धारण करता है।

समूढमकम् (भली-भाँति युक्त ढंग से) (पाँसुरे) बहुत बारीक कणों में।

इसका अर्थ है, जब-जब विषितो-विविध प्रकार से (रश्मियों से) व्याप्त होता है, तब विष्णु होता है। विष्णुः विशंति अर्थात् प्रविष्ट होता है। अश्नेति से अर्थात् व्यापकता से।

इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि यह जगत् तीन प्रकार के सूक्ष्म कणों के विशेष चक्र में गति करने से उस सर्वव्यापक परमात्मा द्वारा भली प्रकार संगठित हुआ है।

आज का विज्ञान भी यह बताता है कि पूर्ण जगत् के पदार्थ तीन प्रकार के अत्यन्त बारीक कणों के विशेष प्रकार से चक्र में आने से बने हैं। ये कण हैं इलैक्ट्रोन, प्रोट्रोन और न्यूट्रोन। इन्हें वैदिक भाषा में आपः कहा है। सांख्य में इनको अहंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा है। तीन अहंकार हैं—तैजस्, वैकारिक और भूतादि। इनके संयोग से ही पंच महाभूत बनते हैं जो सब संसार के पदार्थों का मूल कारण हैं।

यही इस मन्त्र में बताया है। इन अहंकारों का ही यहाँ वर्णन है। उनके गति करने में कारण है विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा।

यह है वेदों का विष्णु। परन्तु इतिहास में दक्ष की कन्या अदिति और कश्यप के सबसे छोटे पुत्र का नाम विष्णु है।

इन नामों की समानता में किसी प्रकार का वैचित्र्य नहीं। आज भी मनुष्यों के नाम विष्णु, सूर्य, चन्द्र इत्यादि रखे जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भी वैदिक शब्दों को लेकर मनुष्यों के नाम रखे जाते थे।

इतिहास में तो ब्रह्मा भी किसी व्यक्ति का ही नाम हो सकता है, परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति का नहीं।

इसी प्रकार प्रथम उत्पन्न हुए देवता का नाम इन्द्र है। परन्तु इतिहास में तो इन्द्र मानव-पुत्र ही है। —ऋ० २-१२-१

अतः इतिहास को पढ़ते हुए दो प्रकार से आये नामों का परस्पर मिश्रण नहीं करना चाहिए। जहाँ इतिहास में ये नाम आयें, वहाँ उन्हें मनुष्य ही समझना चाहिए और जब इनका सृष्टि-रचना में उल्लेख हो तो इन्हें प्राकृतिक शक्ति समझना चाहिए।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि विष्णु का नाम आदिकाल में भी आता है और त्रेता युग में भी। उसका माली, सुमाली इत्यादि रावण के पुरखों से युद्ध हुआ था।

आदि युग से रावण का युग लगभग ३० लाख वर्ष बाद हुआ था। प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या आदि युग में अदिति का कनिष्ठ पुत्र विष्णु ही वह विष्णु था जो माली, सुमाली और माल्यवान से लड़ा था।

इन दोनों को एक कहना न केवल सुननेवालों को मूर्ख बनाना है वरन् अपने को भी मूर्ख सिद्ध करना है।

हम समझते हैं कि आदि युग में जो आदित्यों का गुरु था, वह ब्रह्मा कहाया था। वह आदित्यों और दैत्यों को भी उन्नति का मार्ग बताया करता था।

आदियुग में आदित्यों और दैत्यों में स्वभाव-भेद होने के कारण वैमनस्य और झगड़ा हो गया था। अमृत-मंथन के उपरांत आदित्यों और दैत्यों में एक निर्णायक युद्ध हो गया और तब दैत्य देवलोक छोड़कर दक्षिण सागर के द्वीपों में चले गये थे।

अमृत-मंथन की घटना मध्य सत्-युग में हुई प्रतीत होती है। अमृत वितरण के उपरांत जब युद्ध में दैत्य अत्यन्त हीन हो गये तो आदित्यों के पुरोहित ब्रह्मा की सम्मति से ही वे दक्षिण के सागर के द्वीपों में जा बसे थे। इसके उपरांत देवताओं को अपने राज्य की सुरक्षा का विचार उत्पन्न हुआ तो उन्होंने चार लोकपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्त किये। देवलोक की पश्चिम की ओर से रक्षा के लिए जो नियुक्त हुआ, उसकी उपाधि विष्णु हुई है और जो पूर्व की ओर से देवलोक की रक्षा के लिए लोकपाल नियुक्त हुआ था, वह वरुण था। इसी प्रकार उत्तर की ओर रक्षा के लिए इन्द्र नियुक्त हुआ और दक्षिण में पहले मित्र को, बाद में कुबेर को लोकपाल नियुक्त किया गया था।

ये विष्णु, वरुण, इन्द्र इत्यादि इन लोकपालों की उपाधियाँ थीं। जो भी इन स्थानों पर इस कार्य के लिए नियुक्त होते थे, वे इन्हीं नामों से विख्यात होते थे।

यह इसी प्रकार है जैसे ब्रिटिश काल में जो भी भारत पर मुख्याधिकारी नियुक्त होता था, वह 'वायसराय' कहाता था।

यह प्रथा सत्युग में चली और त्रेतायुग में भी इसको चालना दी गयी।

मध्यकालीन ब्राह्मण कुछ सीमा से अधिक मूढ़ रहे हैं। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर अट्ठारह पुराण लिखे और वे ब्राह्मण, इन्द्र, विष्णु इत्यादि प्राकृतिक देवताओं में और ऐतिहासिक पुरुषों में भेद नहीं कर सके। न ही ये इस बात का युक्तियुक्त वर्णन कर सके कि सत्युग का इन्द्र, अर्जुन के साथ, खाण्डव वन को दग्ध करने के समय कैसे लड़ने चला आया था। अथवा राम के काल में विद्यमान अर्जुन के साथ कैसे युद्ध कर सका था।

ये पुराण एक ओर तो इन सत्युग, त्रेतायुग और द्वापर युग के इन्द्र वरुणादि को एक बताने का यत्न करते हैं, दूसरी ओर इन कालों में लाखों वर्ष का अन्तर बताते हैं।

इसी कारण महर्षि स्वामी दयानन्द ने कह दिया था कि ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण लिखनेवाले भाँग पीकर लिखते रहे हैं।

हमने यहाँ उन ग्रन्थों की बुद्धियुक्त विवेचना करने का यत्न किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम खण्ड

: १ :

जल-प्लावन

जल-प्लावन का उल्लेख प्रायः सब पुराणों में मिलता है। वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत में इसका वर्णन अति विस्तार से है। अन्य भारतीय ग्रन्थों में भी इसका वर्णन आता है।

भारत के बाहर के देशों के प्राचीन ग्रन्थों में भी जल-प्लावन का उल्लेख है। बाइबल के पुराने तथा यहूदी, मिस्री, तुरानी, चीन इत्यादि देशों के प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका वर्णन है। यहाँ तक कि मैक्सिको की प्राचीन जातियों के इतिहास में भी इस जल-प्लावन का वर्णन मिलता है।

हम इसे एक सत्य घटना मानते हैं। वर्तमान युग के यूरोपियन इतिहासकार इसे माइथॉलोजी कहकर इसकी अवहेलना करते हैं। इनकी अवहेलना इस प्रकार की है जैसे पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि भारत का स्वतन्त्रता-संग्राम, महात्मा गांधी के भारत में आने पर आरम्भ होता है। जैसे जवाहरलाल नेहरू भारत के इतिहास से अनभिज्ञ थे, वैसे ही यूरोपियन इतिहासज्ञ भी अपनी नाक के आगे न देखते हुए इतिहास का आरम्भ तब से मानते हैं, जब रोमवालों ने सैक्सनी अथवा इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया था।

और क्योंकि तब से जल-प्लावन पहले हो चुका था, इसी कारण उनके ज्ञान में जल-प्लावन की कथा मिथ्या है।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू को अंग्रेजों के भारत में आने से पहले का इतिहास पता नहीं था। इस कारण उसके विचार में भारत की दासता अंग्रेजों से आरम्भ हुई और उसकी आजादी की जंग गांधीजी ने ही आरम्भ की। पण्डित नेहरू के लिए मुसलमानों और उनसे पूर्व शकों से युद्ध करनेवाले शिवाजी, राणा प्रताप इत्यादि का अस्तित्व ही नहीं था।

यही कारण है कि जब भारत में संवत् चलाने का निर्णय होने लगा तो शक संवत् को ही राजकीय संवत् घोषित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि पण्डितजी को यह भी ज्ञात नहीं था कि शक विदेशीय थे और अति बर्बर स्वभाव के थे। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलपूर्वक भारत के बहुत से भाग पर अधिकार जमा लिया था। इस कारण उनके नाम से प्रचलित संवत् को राजकीय संवत् घोषित करके उन्होंने भयंकर भूल की। विक्रमादित्य के नाम से प्रचलित विक्रम संवत् का नेहरू के लिए कोई अस्तित्व ही नहीं रहा।

यही कहानी यूरोपियन साहित्यकारों और इतिहासकारों की है। उनका ज्ञान बाइबल तक ही सीमित रहा है। इस कारण वे उससे इधर-उधर देख नहीं सकते। बाइबल भी केवल नया भाग ही। पुराना व्याख्यान उनको मिथ्या प्रतीत होता है।

इस पृथिवी पर जल-प्लावन हुआ था यह निर्विवाद है। यह कैसे हुआ, इसका वर्णन पुराणों में है। उदाहरण के रूप में वायुपुराण में कहा है—

सहस्रं यत्तु रश्मिनां सूर्यस्येह विभासते।
ते सप्तरश्मयो भूत्वा ह्यैकैको जायते रविः॥ —वायुपुराण ७-४१

इसका अर्थ है—जब कल्पान्तरिक प्रलय होनेवाली थी तो इसी सूर्य से सहस्रों गुणा किरणें निकलने लगीं और यह एक-एक किरण सात गुणा होकर सूर्य से उत्पन्न होने लगीं।

इसका अभिप्राय है कि एक समय सूर्य की सहस्रों किरणें सात गुणा हो गयीं। उनके प्रभाव से—

जंगमं स्थावरं चैव नदीः सर्वांश्च पर्वतान्।
पूर्वे शुष्का ह्यनावृष्ट्या सूर्यैस्तैश्च प्रधुपिताः॥ —वायु पु० ७-४२

अर्थात्—जब क्रम से ताप बढ़ा तो तीनों लोक जल उठे और जंगम तथा स्थावर प्राणी सूर्य के ताप से राख हो गये। नदी-नाले सूख गये।

तदनन्तर जब सूर्य का तापक्रम कम हुआ तो पृथिवी का जल जो अन्तरिक्ष में चला गया था, वर्षा से बरसा और पूर्ण पृथिवी पर जल-प्लावन हो गया।

इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। सूर्य का ताप वहाँ पर परमाणुओं के विघटन और संयोग से होता है। यह कहा जाता है कि सूर्य पर हाइड्रोजन के परिमण्डल संयुक्त होकर हीलियम बना रहे हैं और उनकी इस क्रिया से अपार ताप प्रस्फुटित हो रहा है।

कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि पृथिवी पर जल-प्लावन से पहले सूर्य पर यह क्रिया तीव्र होकर सात गुणा हो गयी। इससे पृथिवी पर पहुँचनेवाली उष्मा बहुत बढ़ गयी और पृथिवी के सब स्थावर और जंगम प्राणी जलकर भस्म हो गये। यहाँ के सब नदी-नाले खुश्क हो गये। उनका सब जल शुष्क हो गया और आकाश में चला गया।

सूर्य की यह विघटन की जब वृद्धि रुकी और फिर ताप सामान्य हुआ तो आकाश में गया हुआ जल वर्षा होने पर पृथिवी पर आ गया। तब पृथिवी जल-मग्न हो गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वराह नाम की दिव्य शक्ति से जल सूखने लगा और पृथिवी जल से निकलने लगी। महाभारत में भी जल-प्लावन की कथा इसी प्रकार आती है। वहाँ लिखा है—

सम्प्रक्षालनकालोऽयं लोकानां समुपस्थितः।
तस्मात् त्वां बोधयाम्यद्य यत् ते हितमनुत्तमम्॥

—महाभारत वन० १८७-२९

अर्थात् अब पृथिवी को धो डालने का समय आ गया है। मत्स्य भगवान् ने मनु से यह प्रस्ताव किया कि वह उनके लिए एक ऐसी नौका बना देगा जिसमें वह अग्नि और वर्षा से बच जायेंगे।

सम्भवतया उस काल में मत्स्य नाम का कोई अति विद्वान् पुरुष रहा होगा। उसे अपनी विद्या से विदित हो गया होगा कि जल-प्लावन होनेवाला है। अतः उसने किसी प्रकार की पनडुब्बी बना दी होगी जिसमें मनु सागर के गर्भ में रहता हुआ अपना जीवन बचा सका था।

यह कहा जाता है कि जब सूर्य का ताप बढ़ने लगा तो मनु अपने साथ सात ऋषियों को लेकर उस पनडुब्बी में चला और सागर के नीचे विचरता रहा।

जब सूर्य पर संयोग-वियोग कम हुआ, तापक्रम कम हुआ तो वर्षा हुई और वर्षा थम जाने पर मनु हिमालय के पठार पर पहुँच गया। यहाँ से दोबारा सृष्टि-रचना हुई।

यह मनु कौन था?

इस विषय में कहा है कि वह विवस्वान की सन्तान में से एक था और उस समय वह भूमण्डल का शासक था।

इसे विवस्वान का प्रतापी पुत्र कहा है। यह प्रथा प्रतीत होती है कि किसी महापुरुष की सन्तान सब उसके पुत्र कहाते थे।

पुत्र का अभिप्राय सन्तान ही है। यह प्राचीनकाल की सर्वत्र प्रथा थी कि किसी महापुरुष के वंश में उत्पन्न होनेवाले सब उसके पुत्र ही कहे जाते थे।

इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि मनु विवस्वान की पीढ़ी में कब हुआ। विवस्वान का एक अर्थ सूर्य भी है। परन्तु वह विवस्वान जिसकी सन्तान मनु था, राजा था। उसके पिता ने उसका नाम विवस्वान वैसे ही रखा होगा जैसे आजकल कई माता-पिता अपने पुत्र का नाम सूर्य रख देते हैं।

मनु विवस्वान के कुल में से था और जल-प्लावन के उपरान्त उसने पुनः सृष्टि-रचना आरम्भ की।

मनु के साथ बचे ऋषियों ने तो रचना-कार्य किया नहीं। न ही सन्तान उत्पन्न की। किन्तु मनु की सन्तान का उल्लेख महाभारत में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

वैदिक काल

महाभारत में कहा है—

धर्मात्मा स मनुर्धीमान् यत्र वंशः प्रतिष्ठितः ।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ।।
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ।
ततोऽभवन्महाराज ब्रह्म क्षत्रेण संगतम् ।।

—महाभारत शान्ति० ७५-१३,१४

अर्थात्—बुद्धिमान मनु बहुत धर्मात्मा थे। उन्होंने अपना वंश प्रतिष्ठित किया। उनका वंश मानव वंश विख्यात हुआ।

इस संसार में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों स्वभाव के लोग मनु से ही उत्पन्न हुए। जो ब्राह्मण स्वभाव के हुए उन्होंने छहों अंगों सहित वेद धारण किये।

मनु के दस पुत्र विख्यात हैं—वेन, धृष्णु, नदिध्यात, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारुष, शमीति, इला, पृषध्र, नाभागारिष्ठ। इनके अतिरिक्त भी मनु के पचास पुत्र और हुए। परन्तु वे परस्पर लड़ पड़े और नष्ट हो गये।

इन दस पुत्रों से ही सृष्टि चली। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो मत्स्य भगवान् की बनायी पनडुब्बी में बहुत-सी स्त्रियाँ भी मनु ने बचा ली होंगी अथवा कहीं-कहीं भू-भाग के अन्य स्थान भी ताप, वर्षा और जल-प्लावन से बच गये होंगे।

यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि दक्षिण ध्रुव जो सदा बर्फ से ढका रहता है और जहाँ कभी वसन्त ऋतु नहीं आती, वह सूर्य के अधिक क्रियाशील होने पर भी बच गया हो। वहाँ की बर्फ पिघल गई हो और वहाँ पर कुछ मनुष्य पहुँचकर बच गये हों। वहाँ बची स्त्रियों से ही यह सन्तान हुई हो।

एक अन्य व्यक्ति का भी उल्लेख मिलता है। लिखा है कि इला मनु की लड़की थी। उसने चन्द्र के पुत्र बुध से विवाह किया था। इससे भी हमारे विचार को पुष्टि मिलती है कि पृथिवी के कुछ भाग ताप और वर्षा से बच गये थे। अधिक सम्भव यह प्रतीत होता है कि पृथिवी की डोलने की गति के कारण दक्षिण ध्रुव जो सदा बर्फ से ढका रहता है, इस सूर्य पर बढ़े ताप से रहने योग्य हो गया हो और वहाँ कुछ लोग जाकर बस गये हों। वहाँ की किसी स्त्री से मनु का विवाह हुआ और चन्द्रकुमार बुध नामक मनुष्य से इला का विवाह हुआ हो।

इस काल में अमैथुनीय सृष्टि होने का किसी भी ग्रन्थ में प्रमाण नहीं मिलता। हमारा अनुमान है कि जब ताप बहुत बढ़ने लगा होगा और दक्षिण ध्रुव की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्फ पिघलने लगी होगी, तब पृथिवी के उत्तरी गोलार्द्ध से कुछ लोग नौकाओं में सवार हो वहाँ चले गये होंगे।

यह तो लिखा है कि ताप क्रमवार बढ़ा। सम्भवतया इसके बढ़ने में कई वर्ष लगे हों। यह वस्तुस्थिति है कि मनु के पुत्र ऋषियों की संगति में बड़े हुए और उन्होंने उनसे शिक्षा प्राप्त की। इससे यह पता चलता है कि वे लोग वेदभाषा समझते थे। अतः हम इसे वैदिक काल ही कहेंगे।

इस बात का प्रमाण महाभारत में मिलता है।

महाभारत में यह चर्चा चलायी गयी कि यह वेद ज्ञान कैसे इस पृथिवी पर आया। इस विषय में महर्षि व्यास अलंकार बाँधते हुए कहते हैं—

तृतीयं ब्रह्मणो जन्म यदासीद् वाचिकं महत्।
तत्रैष धर्मः सम्भूतः स्वयं नारायणान्नृप॥
सुपर्णो नाम तमृषिः प्राप्तवान् पुरुषोत्तमात्।
तपसा वै सुतप्तेन दमेन नियमेन च॥
त्रिः परिक्रान्तवानेतत् सुपर्णो धर्ममुत्तमम्।
यस्मात् तस्माद् व्रतं ह्येतत् त्रिसौपर्णमिहोच्यते॥

—महाभारत शान्ति० २-३४८-१९, २०, २१

इन श्लोकों का अर्थ है—ब्रह्मा का जब तीसरा जन्म हुआ जो वाचक कहा जाता है, उस जन्म में सुपर्ण पुरुषोतम था।

तीसरे जन्म का भावार्थ है तीसरा मन्वन्तर। ब्रह्मा (परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति) प्रति मन्वन्तर में नयी उत्पन्न होती है। अर्थात् ब्रह्मा के तीसरे जन्म के अर्थ हैं तीसरे मन्वन्तर में त्रयी विद्या प्रकट हुई।

शतपथ ब्राह्मण (६-१-१-८) में बताया है कि त्रयी विद्या (वेद) ब्रह्मा (प्रजापति अर्थात् बन रहे ब्रह्माण्ड) ने कही है। वेद में भी (ऋ० १०-१३०-२३) यह वर्णन है कि जब देवता बन गये तो वेद छंदों के रूप में उच्चरित होने लगे। वही बात यहाँ कही है कि तीसरे मन्वन्तर में सुपर्ण (परमात्मा) ने त्रयी विद्या का उच्चारण किया।

महाभारत में आगे लिखा है—

ऋग्वेदपाठपठितं व्रतमेतद्धि दुश्चरम्।
सुपर्णाच्चाप्यधिगतो धर्म एष सनातनः॥

—महाभारत शान्ति० ३४८-२२

अर्थात्—ऋग्वेद पाठ का दुष्कर धर्म पढ़ा गया। यह दुष्कर कार्य सुपर्णा ने किया। अभिप्राय यह कि शाश्वत धर्म तथा ऋग्वेद पर्यायवाची शब्द हैं और वेद में कहे अनुसार यहाँ भी मानव-सृष्टि होने से पहले ही प्रचारित होने की बात लिखी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे कहा है—

ततः प्रावर्तत तदा आदौ कृतयुगं शुभम् ।
ततो हि सात्वतो धर्मो व्याप्य लोकानवस्थितः ।।

—महाभारत शान्ति० ३४८-३४

अर्थ है—तब (ब्रह्मा ने) सत्युग के आदि में इस शुभ शात्वत धर्म का व्यापक प्रचार किया।

त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान् मनवे ददौ ।
मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ ।
इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्त लोकानवस्थितः ।
गमिष्यति क्षयान्ते च पुनर्नारायणं नृप ।।

—महाभारत शान्ति० ३४८-५१,५२

अर्थ है—फिर त्रेतायुग के आरम्भ में विवस्वान् ने यह धर्म मनु को दिया। मनु ने सम्पूर्ण प्राणियों के हित के लिए इक्ष्वाकु को इसका उपदेश दिया। इक्ष्वाकु के उपदेश से इस सत्य धर्म का सम्पूर्ण लोक में प्रचार हुआ।

इस प्रकार इस वैदिककाल का वर्णन महाभारत और पुराणों में आता है। साथ ही यह भी स्पष्ट वर्णन है कि यह वैदिककाल त्रेता युग के आरम्भ में आया था।

युगों के काल की गणना और उसका आधार हम लिख चुके हैं। जब भूमण्डल के इतिहास का वर्णन किया जाये तो युगों का सेवन ही अधिक उपयुक्त समझ में आता है।

त्रेतायुग का आदिकाल आज से लगभग इक्कीस लाख वर्ष पूर्व की बात है। इतने वर्ष का इतिहास लिखने के लिए भारतीयों ने एक दूसरा ढंग निकाला है। वह यह कि राजाओं की वंशावलियाँ लिखने के स्थान नामावलियाँ लिखी जाएँ।

जैसे मनु विवस्वान् का पुत्र था। विवस्वान् मनु के वंश को चलानेवाला था। परन्तु वाल्मीकीय रामायण में राम की वंशावली इस प्रकार लिखी है—

ब्रह्मा-मरीचि-कश्यप-विवस्वान्-मनु-इक्ष्वाकु।

ब्रह्मा था सत्युग के आदिकाल में और यहाँ ब्रह्मा से अभिप्राय है प्रजापति। मरीचि अमैथुनीय सृष्टि का महर्षि था। परन्तु मनु हुआ है त्रेतायुग के आदि में।

इसी प्रकार इक्ष्वाकु से राम तक जो वंशावली दी है वह वास्तव में नामावली ही है। उसमें मुख्य-मुख्य नाम दिये हैं।

इसी प्रकार चन्द्रवंशियों की वंशावली जो महाभारत में दी है, वह भी नामावली ही है। वहाँ भी वंशावली लिखनेवाले ने इस प्रकार लिखा है—दक्ष-प्रजापति-मनु-इला।

इतने लम्बे काल का इतिहास लिखने के लिए काल में हुए मुख्य-मुख्य पुरुषों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाम से काल का विभाजन किया है। उदाहरण के रूप में वायु पुराण में त्रेतायुग को २४ भागों में बाँटा है और द्वापर को २८ भागों में।

इस बँटवारे का आधार इन युगों में हुए युग-प्रवर्तक महापुरुष ही हैं उदाहरण के रूप में स्वायम्भुव मनु त्रेतायुग के प्रथम महान् व्यक्ति माने गये हैं। और त्रेता-युग का अंतिम व्यक्ति है दाशरथी राम।

वायु पुराण ३१-५ में कहा है—

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा।

अर्थात्—स्वायम्भुव के उपरान्त में आये त्रेतायुग में।

अभिप्राय यह है कि वह मनु जो जल-प्लावन में बचा था, वह त्रेतायुग के आरम्भ में था।

निष्कर्ष

हमने यह बताने का यत्न किया है कि जल-प्लावन के पूर्व और पश्चात् के इतिहास के विवरण में अन्तर है। इसका कारण यह है कि प्लावन-पूर्व का साहित्य बहुत कुछ विनष्ट हो गया था। प्लावन के उपरान्त का इतिहास अधिक स्पष्ट है। फिर भी इक्कीस लाख वर्ष का इतिहास वैसा नहीं हो सकता जैसे मुगल सम्राटों का मिलता है। मुगल राज्य भारत में अढ़ाई-तीन सौ वर्ष रहा और इक्ष्वाकु वंश का इतिहास लगभग दस-बारह लाख वर्ष का है। इस कारण दोनों के लिखने की विधि में अन्तर है।

हमने यह भी बताया है कि वायु पुराण में त्रेतायुग के मुख्य-मुख्य पुरुषों के नाम पर काल का विभाजन किया गया है।

: ३ :

वैदिक काल की कुछ घटनाएँ

स्वायम्भुव मनु से एक अभिप्राय तो है सृष्टि-रचना का प्रथम मन्वन्तर। हमने बताया है कि ब्रह्म दिन में १४ मन्वन्तर माने गये हैं जिनमें से सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

इनमें से प्रथम मन्वन्तर स्वायम्भुव मन्वन्तर माना गया है।

परन्तु त्रेतायुग के मनु का सम्बन्ध स्वायम्भुव मनु से है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यास्क अपने ग्रन्थ निरुक्त (३-४) में एक श्लोक उद्धृत करता है। उसमें स्वायम्भुव मनु का 'विसर्गौ दौ' में वर्णन है।

सर्गौ दौ, विसर्गौ दौ से भिन्न है। सर्ग का आदि तो एक अरब सतानवें करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था परन्तु विसर्ग का अभिप्राय जल-प्लावन अर्थात् मन्वन्तर प्रलय के उपरान्त मनु द्वारा उत्पत्ति है।

इसी प्रकार वायु पुराण में स्वायम्भुव मनु से जल-प्लावन की सृष्टि कही गयी है।

अतः हमारा मत है कि स्वायम्भुव मन्वन्तर और त्रेतायुग का स्वायम्भुव मनु एक ही व्यक्ति नहीं हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तर तो काल विभाग का नाम है परन्तु जल-प्लावन से सम्बन्धित स्वायम्भुव मनु एक व्यक्ति का नाम था। इसके वंश का उल्लेख वायु पुराण में इस प्रकार मिलता है—

प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु।
प्रजासर्गंतपायोगैस्तैरियं विनिवेशिता॥ —वायु० ३१-६

अर्थात्—प्रियव्रत के पुत्र और स्वायम्भुव के पौत्रों के द्वारा ही यह प्रजा की उत्पत्ति हो गयी।

हमारा विचार है कि स्वायम्भुव वैवस्वत मनु ही है।

वायु पुराण में आगे कहा है कि—

प्रियव्रतात् प्रजावन्दः वीरान् कन्या व्यजायत।
कन्या सा तु महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः॥

—वायु० ३१-७

अर्थात्—प्रजापति वीर प्रियव्रत के एक कन्या थी उसका विवाह कर्दम प्रजापति से हुआ।

महाभागवत् पुराण में कर्दम की कथा इस प्रकार लिखी है—

स्वायम्भुवस्य च मनोर्वंशः परमसम्मतः।
कथ्यतां भगवन् यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य वै।
यथाधर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम्॥
तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता।
पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ॥

—भाग० पुराण ३-२१-१,२,३

अर्थात्—और स्वायम्भुव का मनु वंश बहुत सम्मानित माना जाता है। उन्होंने मैथुन धर्म के द्वारा प्रजा वृद्धि की।

स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद ने सातों द्वीप पृथिवी का धर्मपूर्वक पालन किया तथा उनकी पुत्री देवहूति कर्दम प्रजापति से ब्याही गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन कर्दम के घर कपिल का जन्म हुआ। कपिल वेद का प्रकाण्ड विद्वान् था।

वायु पुराण के कथन से यह विदित होता है कि प्रियव्रत की कन्या का विवाह कर्दम से हुआ था। महाभागवत पुराण में यह भी कहा है—

मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम्।
आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम्॥
तस्मिन् सुधन्वन्नहनि भगवान् यत्समादिशत्।
उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत्॥

—भाग० पु० ३-२१-३६,३७

अर्थ है—मनु, महारानी शतरूपी के साथ स्वर्ण रथ पर अपनी कन्या को साथ लेकर भ्रमण करते हुए वहाँ आ पहुँचे।

आगे कहा है—

तत्प्रतीच्छ द्विजाय्ये मां श्रद्धयोपहृतां मया।
सर्वात्मनारूपां ते गृहमेधिधु कर्मसु॥

—भा० पुराण ३-२२-११

अर्थ है—मैं बड़ी श्रद्धा से आपको यह कन्या समर्पण करता हूँ। आप इसे स्वीकार कीजिए।

यह भी कहा है कि देवहूति प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहन थी।

इससे जो बात स्पष्ट होती है वह यह कि यह घटना त्रेतायुग के आरम्भ और जल-प्लावन के कुछ ही समय बाद की है।

कर्दम और देवहूति का पुत्र कपिल हुआ है जो सांख्यदर्शन का रचयिता था। वह वेदों का प्रकाण्ड विद्वान् था और उसका सांख्यदर्शन वेद ज्ञान पर ही आधारित था।[1]

इस कथा का वर्णन करने का हमारा आशय यह है कि यह वह काल था जब वेद समझे जाते थे। जन-साधारण की भाषा वेद भाषा ही थी।

सांख्य दर्शन वेदार्थ नहीं है। यह वेद के सिद्धान्तों का विस्तार ही है।

वैसे हम महाभारत के प्रमाण से बता चुके हैं (महाभा० १२-३४८-५३) कि मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने वेद धर्म का सम्पूर्ण जगत् में प्रचार किया था। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उस काल में सब-के-सब लोग वेद के विचार को स्वीकार करते थे।

इसी काल की एक और कथा है—

---

१. इस विषय पर विस्तृत विवेचन के लिए लेखक की रचना 'सांख्य-दर्शन सरल, सुबोध, भाषा-भाष्य' की भूमिका में 'सांख्य का आधार वेद' देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु की एक लड़की थी इला। उसका विवाह चन्द्र के पुत्र बुध से हुआ था। इस विवाह के परिणामस्वरूप पुरूरवा का जन्म हुआ।

जब भूमि से जल उतर गया तो मनु ने अपने इला-पुत्र पुरूरवा को समुद्र के द्वीपों का राज्य दे दिया।

त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः।—महाभारत आदि० ७५-१९

परन्तु कहा है कि—

अनुषंमावृतः सत्त्वैर्मानुषः सन् महायशाः।
विप्रैः स विग्रहं चक्रे वीर्योन्मतः पुरूरवाः॥
जहार च स विप्राणां रत्नान्युत्क्रोशतामपि।
सनत्कुमारस्तं राजन् ब्रह्मलोकादुपेत्य ह॥
अनुदर्शं ततश्चक्रे प्रत्यगृह्णान्न चाप्यसौ।
ततो महर्षिभिः क्रुद्धैः सद्यः शप्तो व्यनश्यत॥

—महाभारत आदि० ७५-२०,२१,२२

अर्थ है—पुरूरवा समुद्र के तेरह द्वीपों के शासन का उपभोग करता था।

पुरूरवा मनु-सन्तान होकर भी अमानुषों (पशुओं) का-सा व्यवहार करता था। वैसे ही लोगों से घिरा रहता था। वह अपने बल-पराक्रम से उन्नत होकर विद्वानों के साथ झगड़ने लगा। बेचारे विद्वान् चीखते-चिल्लाते रहते थे तो भी वह उनका सारा धन छीन लेता था।

ब्रह्मलोक से आकर सनतकुमार ने उसे बहुत समझाया कि ब्राह्मणों पर अत्याचार न करे। परन्तु उसने उसकी शिक्षा ग्रहण नहीं की। तब महर्षियों ने उसे शाप देकर नष्ट कर दिया।

अतः जब हम वैदिक काल की बात करते हैं तो हमारा यह अभिप्राय नहीं होता कि उस काल में सब वेदानुयायी ही होते थे। देव और असुर प्रवृत्ति के लोग सब काल में रहे हैं। उनकी संख्या न्यूनाधिक होती रहती है।

जब वेद और विद्या का प्रचार बढ़ जाता है तो भले धर्मात्मा लोग संख्या में बढ़ जाते हैं और जब वेद विद्या का प्रचार कम होता है तो धर्मात्मा पुरुषों की संख्या कम हो जाती है।

वेद विद्या का प्रचार तब बढ़ता है जब वेद की भाषा को समझने वाले अधिक होते हैं। यह वेद समझने में प्रथम पग है। दूसरा पग है वेद के कथन पर आचरण करना। इसके लिए वेद के ज्ञाता आचार्यों की आवश्यकता होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ४ :

वैदिक काल की एक अन्य कथा

यह त्रेतायुग के अन्त से कुछ पहले की बात है। जमदग्नि नाम के एक भृगु-वंशीय तपस्वी ब्राह्मण थे। वे सरस्वती तट पर उस क्षेत्र में रहते थे, जो कुरुक्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ था।

भृगुवंशीय ब्राह्मण पूर्णतया वैदिक सभ्यता को माननेवाले नहीं थे। यह इस बात से पता चलता है कि जमदग्नि की माता सत्यवती गाधिक नाम के भृगु-वंशीय की कन्या थी। गाधिक ने एक सहस्र अश्व लड़की का मूल्य लेकर सत्यवती का विवाह किया था।

यह प्रथा वेदानुयायियों में नहीं थी। इस अनार्य कन्या सत्यवती का पुत्र जम-दग्नि और जमदग्नि का पुत्र परशुराम था।

परशुराम के पिता के आश्रम पर क्षत्रिय अभिमानी कार्तवीर्य ने आक्रमण कर वहाँ की कामधेनु गाय के बछड़े का हरण कर लिया।

परशुराम को जब यह पता चला तो वह कार्तवीर्य के नगर में पहुँचा और युद्ध में कार्तवीर्य की हत्या कर अपनी गाय के बछड़े को छुड़ाकर आश्रम में ले आया।

तब कार्तवीर्य के पुत्रों ने उस समय उसके आश्रम पर आक्रमण कर दिया, जब परशुराम वहाँ नहीं था। उन्होंने परशुराम के पिता जमदग्नि की हत्या कर दी।

इस बात को जानकर परशुराम को क्रोध आ गया और उसने वहाँ आस-पास के सब क्षत्रियों का विनाशकर दिया। इतने क्षत्रिय मारे कि उनके रक्त से छः बड़े-बड़े कुण्ड भर गये। आखिर परशुराम के पूर्वजों ने जब अपने पोते को यह कुकर्म करते देखा तो उन्होंने उसे मना कर दिया।

फिर भी परशुराम के मस्तिष्क पर क्षत्रियों के लिए द्वेष भरा हुआ था।

इस द्वेष के कारण ही परशुराम उस समय राम की हत्या करने चल पड़ा था, जब राम ने शिव धनुष तोड़ डाला था। परशुराम यह सहन नहीं कर सकता था कि कोई बलशाली क्षत्रिय जीवित रहे।

परन्तु राम, परशुराम से अधिक तेजस्वी सिद्ध हुआ और जब परशुराम को राम की सामर्थ्य का ज्ञान हुआ तो वह झगड़ा किये बिना लौट गया।

यह कथा है एक ऐसे क्रोधाभिभूत ब्राह्मण की जो अवैदिक विचार के परिवार का घटक था।

इसी काल में दाशरथी राम का चरित्र दिखाई देता है। वाल्मीकि रामायण में राम के पिता के काल की बात लिखी है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्रदः।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन ॥

—वा० रा० बाल० ६-१५

अर्थात्—(अयोध्या में) वेद के छः अंगों को न जाननेवाला, व्रतों का पालन न करनेवाला, सहस्रों से कम दान देनेवाला, दीन, विक्षिप्त चित्त अथवा दुःखी कोई नहीं था।

इसी प्रकार राजा दशरथ के विषय में कहा है कि वह 'वेदव्रत् सर्व संग्रहः' अर्थात् वेद के विद्वानों का संग्रह करता रहता था।

राम के विषय में कहा है--

सर्वे वेदविदः शूरा सर्वे लोकहिते रताः ॥ —वा०रा० बाल० १८-२५

सब वेद के विद्वान्, शूर और लोकहित में रत रहते थे।

इन सब प्रमाणों से यह समझ में आता है कि दशरथ और दाशरथी राम के काल में भारत के कम-से-कम कोशल राज्य में वैदिक काल चल रहा था।

कोशल राज्य के अतिरिक्त भी अनेक स्थानों पर स्थिति वेदानुकूल थी।

भरत जब राम से मिलने वन को गया था तो उसने राम की कुटिया के बाहर—

प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम्।
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ॥

—वा० रा० अयोध्या ९९-२४

राम के रहने के स्थान के ईशानकोण की ओर एक पवित्र विशाल वेदी दिखी जिसमें अग्नि जल रही थी।

वेदी का अभिप्राय है यज्ञ (हवन) करने का स्थान। यही नहीं, भारत के दक्षिण में भी हनुमान इत्यादि वेद के ज्ञाता रहते थे। जब राम और हनुमान में बातें हुईं तो राम ने हनुमान की प्रशंसा करते हुए कहा—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ॥

—वा० रा० किष्किधा० ३-२८

जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद नहीं पढ़ा, वह इतनी मधुर वाणी नहीं बोल सकता।

इसी प्रकार के प्रमाणों से हमारा मत है कि द्वितीय वैदिक काल भारत में इक्ष्वाकु से आरम्भ हुआ और वह दाशरथी राम तक विद्यमान था। जल-प्लावन के उपरान्त जब पुनः सृष्टि-रचना हुई तो द्वितीय वैदिक काल का आरम्भ हुआ और यह काल राम के काल तक चलता रहा। तब भी लोक-भाषा और वेद-भाषा में अन्तर नगण्य-सा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

सारांश रूप में—

(१) वेद चार हैं। ब्राह्मणादि ग्रन्थ त्रेतायुग तथा उसके उपरान्त लिखे गये हैं। वेद अपौरुषेय हैं और अन्य ग्रन्थ पौरुषेय (मनुष्यकृत) हैं।

(२) वेद के छः अंग हैं। शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त और छन्द। इनमें प्रथम तीन तो वेद विषयों के नाम हैं और शेष तीन वेद भाषा का दर्शन कराते हैं।

(३) वेद के छः उपांग हैं। मीमांसा-दर्शन, वेदान्त-दर्शन (ब्रह्मसूत्र), सांख्य-दर्शन, वैशेषिक-दर्शन, न्याय-दर्शन और योग-दर्शन।

ये दर्शन-शास्त्र वेद में वर्णित विषय की युक्तियुक्त व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उपांग उस समय रचे गये, जब वेद को न माननेवाले विद्वानों ने वेद पर आक्षेप करने आरम्भ किये। उनको युक्ति से वेद का विषय समझाने के लिए दर्शन-शास्त्रों की रचना की गयी।

(४) वेदों का पृथिवी पर आविर्भाव तब हुआ, जब यहाँ मानव-सृष्टि हुई। प्रथम मानव-सृष्टि अन्य प्राणियों की सृष्टि की भाँति अमैथुनीय थी। फिर मैथुनीय सृष्टि-रचना आरम्भ हुई।

वेद परमात्मा की ओर से अग्नि, सूर्यादि दिव्य गुण-युक्त पदार्थों के सहाय से ऊर्जा की तरंगों के रूप में प्रसारित हुए। ऋषियों ने उन तरंगों को ग्रहण कर योग बल से समझा और फिर मानुषी भाषा में समझाया।

अतः वह प्रथम मानुषी भाषा में कहे गये। यह मानवी भाषा भी देवताओं द्वारा प्रसारित हुई और फिर जन-जन ने सीखी। उसी भाषा में ऋषियों ने पुरुषों को वेद का उपदेश दिया।

इसका अभिप्राय यह है कि आदिकाल की जन-जन की भाषा में ही सर्वप्रथम वेद ऋषियों द्वारा मनुष्यों को मिले।

मानवी भाषा राष्ट्री कहायी।

मानव का पृथिवी पर उत्पन्न होना, हमारे विचारानुसार आज से १९,००,००० वर्ष पूर्व हुआ था और तब ही वेदों का आविर्भाव हुआ था।

(५) हम यह वैदिक काल का आरम्भ मानते हैं। जब तक राष्ट्री भाषा और वेद भाषा समान रही, वैदिक काल रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा प्रतीत होता है कि देवलोक में तथा भारत में यह काल पूर्ण सतयुग में रहा।

(६) सतयुग और त्रेता के संधिकाल में जल-प्लावन हुआ, जिसमें पृथिवी का बहुत बड़ा भाग जल-मग्न हो गया। उससे बहुत भारी विनाश हुआ। इसे अवान्तर-प्रलय कहते हैं।

जल-प्लावन में पूर्ण सृष्टि का विनाश नहीं हुआ। कुछ लोग बचे। उन बचे हुओं में देवलोक का प्राणी मनु अपने कुछ साथियों के साथ एक नौका (पनडुब्बी) में बच गया और जल उतर जाने पर उसने नवीन सृष्टि की।

(७) मनु वेदों का ज्ञाता था और उसने तथा उसके पुत्र इक्ष्वाकु ने वेद भाषा और वेद का प्रचार किया।

(८) ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि पूर्ण भूमण्डल में नहीं, तो भी भारत के एक बहुत बड़े भाग में वैदिक काल था अर्थात् वेद भाषा ही जन-भाषा थी। यह राम के काल तक चलता रहा।

(९) वैदिक काल का यह अभिप्राय नहीं कि सब वेद को मान्य ग्रन्थ मानते हों। आदिकाल में भी और जल-प्लावन के उपरान्त भी वेद पर अविश्वास रखने-वाले लोग भी थे।

(१०) वेद ज्ञान का भण्डार है और जिन लोगों ने अपने दिनानुदिन के कार्यों का वेद ज्ञान से सम्बद्ध रखा है, वे सदा उन्नत और फलते-फूलते रहे हैं।

(११) पृथिवी पर अवान्तर प्रलय काल आते रहे हैं। हिम युग भी आते हैं, जिनमें आंशिक प्रलय ही होती है। विशेष रूप में हिम युग पृथिवी के उत्तरी गोलार्द्ध के ४० डिग्री अक्षांश से उत्तर के भाग में आता है। भारत इस बार-बार आनेवाली अवान्तर प्रलय से बचा रहता है। इसी कारण इसमें वेद परम्परा अभी शेष है।

(१२) जल-प्लावन के उपरान्त वैदिक काल आया। इसमें प्रमाण यह है कि मनु से पूर्व के काल में असुर प्रभाव बढ़ गया था और वेद-विद्या का लोप हो रहा था, ऐसा कहा है।

(३) आदिकाल से मानव सृष्टि दो भागों में बँटी दिखाई देती है—दैवी और आसुरी।

मनुष्य प्राणी जीवात्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और शरीर का संयोग है। इनमें जीवात्मा ही एक अनादि अंश है। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तथा शरीर प्रत्येक जन्म पर नवीन मिलते हैं। मनुष्य में इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं और ये कामनाओं से प्रेरित जीवात्मा से कार्य कराती हैं। जो व्यक्ति इन्द्रियों की प्रेरणा से कार्य करते हैं, वे असुर हैं। जीवात्मा और परमात्मा का सामीप्य प्राणी के हृदय की गुहा में होता है। जो मनुष्य इन्द्रियों की प्रेरणा को छोड़कर परमात्मा की प्रेरणा में आ जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह दैवी सम्पत्ति वाला कहाता है।

इस प्रकार दो प्रकार की सम्पत्तिवाले मनुष्य हैं। वेद बताता है कि कैसे जीवात्मा दैवी सम्पत्तिवाला बन सकता है। वेद के अंग और उपांग यही बताते हैं।

इस कारण वेद भाषा समझने से ही मनुष्य दैवी सम्पत्ति तक पहुँच सकता है। यही वेदों की महिमा है।

□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणानामनुक्रमणिका

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा—यजु० २-२९ ५०
अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि—यजु० १-५ ४८
अग्नेर्गायत्र्यभवत्—ऋ० १०-१३०-४ २९
अचाक्षुषाणामनुमानेन—सां० दर्शन १-६० ३८
अथ यद्विषितो भवति—नि० १२-१८ १०४
अथ वाचं यच्छति—शत० ब्रा० १-१-२-२ ४०
अथ शूर्पञ्चाग्नि—शत० ब्राह्मण १-१-२-१ ४०
अथातो धर्म जिज्ञासा—पू० मी० १-१-१ ६८
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा—ब्र० सू० १-१-२ ६९
अथातो मध्यस्थाना देवताः—नि० यास्क १०-१ ८३
अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके—निरुक्त २-१ ६६
अनादिनिधना विद्यावाक्—महाभारत शान्ति० २३२-२४ ३५
अनुदर्शं ततश्चक्रे—महा० आदि० ७५-२२ ११६
अनुपपत्तेस्तु न शारीरः। ब्र० सू० १-२-३ ५६
अन्तर्याम्यधिदैवादिषु—ब्र० सू० १-२-१८ ६३
अपि चेदसि पापेभ्यः—भ० गीता ४-३६ ३६
अमानुषैर्वृतः सत्त्वैर्मानुषः—महा० आदि० ७५-२० ११६
अयं मन्त्रार्थं चिन्ताभ्यूहो—निरुक्त १३-१२ ३७,६६
अरेऽस्य महंतो भूतस्य—वृ० उ० ४-५-११ ३५
अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशात्—ब्र० सू० १-२-७ ५७
अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः—भाग० पु० ३-१०-२५ ९५
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः—भाग० पु० १-३-२६ ८७
अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः।—ब्र० सू० १-४-२२ ६४
अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानम्—वि० पु० १-२-१९ ८२
असत्यमप्रतिष्ठं ते—भ० गीता १६-८ ९८
असद्वाऽइदमग्र—शत० ब्राह्मण ६-१-१-१ ४१
असि यमो अस्यादित्यो—ऋ० १-१६३-३ ६०,८१
असि सोमेन समया—ऋ० १-१६३-३ २६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्य वामस्य पलितस्य—ऋ० १-१६४-१	५८
अहंकार इति ख्यातः—महाभारत शान्ति० १८२-१६	९३
अक्षयं नान्यदाधारममेयमजरम्—वि० पु० १-२-२०	८२
इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य—महा० शान्ति ३४८-५२	७७,११२
इतरपरामर्शात् स इति—ब्र० सू० १-३-१८	६३
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा—ऋ० १-२२-१७	१०४
इन्द्रत्वमकरोद्दैत्यः—विष्णु० पु० १-१७-३	९७
इमा ते वाजिन्नवमार्ज०—ऋ० १-१६३-५	६०
इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव—यजु० १-१	४६
उत्क्रमिष्यत त्वं भावादिति—ब्र० सू० १-४-२१	६४
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म—श्वे० १-७	५५
ईशा वास्यमिद् सर्वं—यजु० ४०-१	५१
एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थम्—श्वे० १-१२	५५
एतां दृष्टिमवष्टभ्य—भ० गीता १६-९	९८
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा—भ० गी० ३-४३	७२
ऋग्वेदपाठपठितं व्रतमेतद्धि—महा० शान्ति० ३४८-२२	१११
ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा।—योग० १-४८	७२
ऋषयो मनवो देवा—भाग० पु० १-३-२७	८७
कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च।—ब्र० सू० १-२-४	५६
कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा—यजु० २-२३	५०
कासीत्प्रमा प्रतिमा किम्—ऋ० १०-१३०-३	२८
कियता स्मम्भः प्र विवेश—अथर्व० १०-७-९	२४
कुर्वन्नेवेह कर्माणि—यजु० ४०-२	६२
गतिशब्दाभ्यां तथा—ब्र० सू० १-३-१५	६३
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्—वि० पु० १-२-३३	८२
गुहां प्रविष्टावात्मानौ—ब्र० सू० १-२-११	५८
गौरीर्मिमाय सलिलानि—ऋ० १-१६४-४१	३२
चाक्लृपे तेन ऋषयो—ऋ० १०-१३०-६	३०
जंगमं स्थावरं चैव—वायु० ७-४२	१०८
जन्म बाल्यं ततः सर्वो—श्रीविष्णु पु० १-१७-५६	९९
जन्माद्यस्य यतः।—ब्र० सू० १-१-२	१५
जहार च स विप्राणाम्—महा० आदि० ७५-२१	११६
ततः प्रावर्तत तदा—महा० शान्ति० ३४८-३४	११२
ततश्च मृत्युमभ्येति—श्री विष्णु पु० १-१७-५७	९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्तेजोमयं दिव्यम्—महाभारत शान्ति० १८२-१५ ९३
ततो ज्येष्ठे तु दौहित्रे—महा० शान्ति० ३४८-५० ७७
तत्तु समन्वयात् ।—ब्र० सू० १-१-४ ५७
तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्ये माम्—भाग० पु० ३-२१-११ ११५
तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः ।—न्याय० १-१-१ ७२
तथा अमीमदन्त पितरो यथा—स्कन्दस्वामी—ऋ० १-३२-३ ३९
तथातथैनं बालं ते—श्री विष्णु० पु० १-१७-५० ९९
तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ—निरुक्त २-१ ६६
तद्विद्धि प्रणिपातेन—भ०गीता ४-३४ ३६
तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि—योग० २-१ ७२
तम आसीत्तमसा—ऋ० १०-१२९-३ २५
तर्काप्रतिष्ठानादपि—ब्र० सू० २-१-११ ३७
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत—यजु० ३१-७ १४
तस्मिन् सुधन्वन्नहनि—भाग० पु० ३-२१-३७ ११५
तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्—भाग० पु० ३-२१-३ ११४
तिरश्चामष्टः सर्गः—भाग० पु० ३-१०-२० ९४
तिस्त्रो मातृस्त्रीन्पितॄन्—ऋ० १-१६४-१० १७
तृतीयं ब्रह्मणो जन्म यदासीद्—महा० शान्ति० ३४८-१९ १११
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया—ऋ० १-१६४-२० ५६
दितेः पुत्रो महावीर्यो—विष्णु पु० १-१७-२ ९७
दूरेण ह्यवरं कर्म—भ० गी० २-४९ १०१
दूरोहण रोहति तस्योक्तम्—ऐतरेय ब्रा०२९-९ ३९
देवीं वाचमजनयन्त—ऋ० ८-१००-११ ३१
धनानामधिपः सोऽभूत्स—विष्णु० पु० १-१७-४ ९७
धर्मजिज्ञासमानानाम्—मनु २-१३ ३४
धर्मात्मा स मनुर्धीमान्—महा० आदि० ७५-१३ ११०
धृतेश्च महिम्नोऽस्य—ब्र० सू० १-३-१५ ६३
न च स्मार्तमतत्—ब्र० सू० १-२-१९ ६३
न ते लोकेष्वसज्जन्त—विष्णु पु० १-७-९ ९१
न द्रष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न—बृहदा० ३-४-२ ४५
न वै राज्यं न—महाभारत शान्ति०५९-१४ ८८
न हि कश्चित्क्षणमपि—भ० गी० ३-५ १०१
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेद—वा० रा० किष्किधा० ३-२८ ११८
नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो—वा० रा० बाल० ६-१५ ११८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृताश्च—निरुक्त ७-३ ६७
पाल्यमानास्तथन्योन्यम्—महाभारत शान्ति० ५६-१५ ८८
पितामहाय शुद्धाय युगादौ—महा०शान्ति० ३४८-४६ ७७
पितृदेवमनुष्याणाम् -मनु० १२-६४ ३५
प्रधानतत्त्वमुद्भूतं महान्तम्—वि० पु० १-२-३४ ८२
प्रधानतत्त्वेन समं त्वचा—वि० पु० १-२-३५ ८२
प्रागुदाक्प्रवणां वेदिम्—वाल्मी० रा० अयोध्या० ६६-२४ ११८
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः—वायु पु० ३१-६ ११४
प्रियव्रतात् प्रजावन्दः—वायु पु० ३१-७ ११४
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ—भाग० पु० ३-२१-२ ११४
प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा—ब्र० सू० १-४-२३ ६४
प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा—यजु० १-७ ४४
बलेश्च प्रथितः पुत्रो बाणो—महाभारत आदि० ६५-२० १०२
ब्रह्मणां वेदानामिमानि—अनुभ्रमो० (सं० १६३७) पृ० ६ ३६
ब्रह्मवादिनो वदन्ति—किं कारणं ब्रह्म—श्वे० उप० १-१ ६६
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्—महा० आदि० ७५-१४ ११०
ब्रह्मणोमानसाः पुत्रा—महाभारत आदि० ६५-१० ६५
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्—विष्णु पु० १-७-५ ६०
मनुः स्यन्दनमास्थाय—भाग० पु० ३-२१-४६ ११५
मरीचेः कश्यपः पुत्रा—महाभारत आदि० ६५-११ ६५
माता पितरमृत आ बभाज—ऋ० १-१६४-८ १६
मानसो नाम विख्यातः—महाभारत आदि० १८२-११ ६२
मृतस्य च पुनर्जन्म—श्रीविष्णु पु० १-१७-५८ ६६
यज्ज्ञात्वा न पुनः—भ०गीता ४-३५ ३६
यत्तत्कारामव्यक्तम्—मनु० १-११ ६२
यत् परममवमं यच्च मध्यमम्—अथर्व० १०-७-८ २३
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम्—भ० गीता १०-४१ ८५
यथैधांसि समिद्धोऽग्निः—भ० गीता ४-३७ ३६
यदक्रन्दः प्रथमं जायमान—ऋ० १-१६३-१ २६,६०
यद्वाग् वदन्त्यविचेतनानि—ऋ० ८-१००-१० ३१
यदास्य ताः प्रजाः—विष्ण पु० १-७-४ ६०
यदिदं सप्तमं जन्म पद्मजम्—महा० शान्ति० ३४८-४८ ७७
यमेन दत्तं त्रित एनम्—ऋ० १-१६३-२ २६,६०
यस्मिन्त्स्तब्ध्वा—अथर्व० १०-७-७ २३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्ता मातासीद्धुरि—ऋ० १-१६४-६ १७
युक्ततोऽपि न बाध्यते—सां० दर्शन १-५६ ३८
यो जात एव प्रथमः—ऋ० २-१२-१ ४१,८३
ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना—यजु० २-३० ५१
यो जात एव प्रथमो मनस्वान्—ऋ० २-१२-१ ८३
रजोभाजो भगवतो—भाग० पु० ३-१०-१८ ६४
राजन्नियम्यतां कोपो—श्रीविष्णु पु० १-१७-४६ ६६
वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा—भाग० पु० ३-१०-१६ ६४
वसोः पवित्रमसि—यजु० १-३ ४२
वायवा याहि दर्शतेमे सोमा—ऋ० १-२-१ ८३
वायुरनिलममृतमथेदम्—यजु० ४०-१५ ५३
वायुर्वातिः। वेतेवा—नि० यास्क ८३
विद्यां चाविद्यां च—यजु० ४०-१४ ५२
विराण्मित्रावरुणयोः—ऋ० १०-१३०-५ २६
विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे—भाग० पु० ३-१०-४ ६४
विवक्षितगुणोपपत्तेश्च।—ब्र० सू० १-२-२ ५६
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश—ऋ० १०-१३०-५ ७५
वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि—ऋ० भाष्यभूमिका (अजमेर मुद्रित २००४; पृ० २३) ८
वेदोऽखिलो धर्ममूलम्—मनु० २-६ ३४
व्यतिरेकानवस्थितेः—ब्र० सू० २-२-४ १६
शतं तेऽयुतं हायनान्—अथर्व० ८-२-२१ २२
शारीरश्चोभयेऽपि—ब्र० सू० १-२-२० ६३
श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया—योग० १-४६ ७२
श्रूयतां परमार्थो मे—श्रीविष्णु पु० १—१७-५५ ६६
सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था—सां० १-६१ ४२,६०,८१
सनन्दनादयो ये च—विष्णु पु० १-७-८ ६१
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्—ऋ० १-१६४-२ ५६
सम्प्रक्षालनकालोऽयं लोकानाम्—महा० वन० १८७-२६ १०६
स योऽयं मध्ये प्राणः—शत० ब्राह्मण ६-१-१-२ ४१
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंश—श्री विष्णु पु० ३-६-२५ ८१
सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ब्र० सू० १-२-१ १५,५६
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते—श्वे० १-६ ५५
सहस्रं यत्तु रश्मिनाम्—वा० पु० ७-४१ १०८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा—यजु० १-४ ४३
सुपर्णो नाम तमृषिः—महा० शान्ति० ३४८-२० १११
सैषा देवतोपपरीक्षा—निरुक्त ७-१ ६७
सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत।—शतपथ ब्रा० ६-१-१-८ ९२
स्थाणुरयं भारहारः—नि० १-१८ ३५
स्वायम्भुवस्य च मनोर्वंशः—भाग० पु० ३-२१-१ ११४
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये—वा० पु० ३१-५ ११३
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादि—वि० पु० १-२-२१ ८२
त्रिः परिक्रान्तवानेतत्—महा० शान्ति० ३४ध-२१ १११
त्रीणि त आहुर्दिवि—ऋ० १-१६३-४ ६०
त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान्—महा० शान्ति० ३४८-५१ ७७,११२
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीसा—श्वे० १-९ ५५

□□□

Central Library
167985
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

081
167985

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

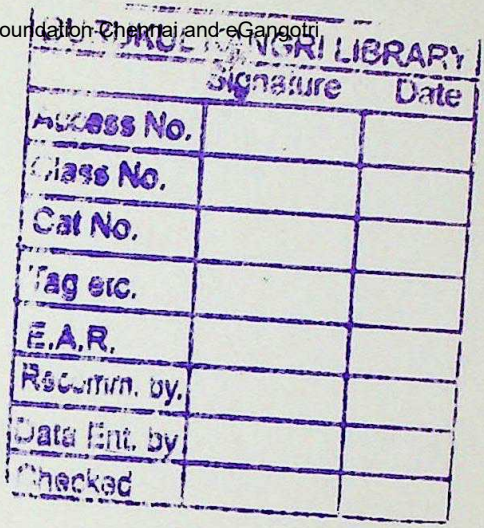

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 089.941 43

वर्ग संख्या.....GUR – V

1679 BS

आगत संख्या.....

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

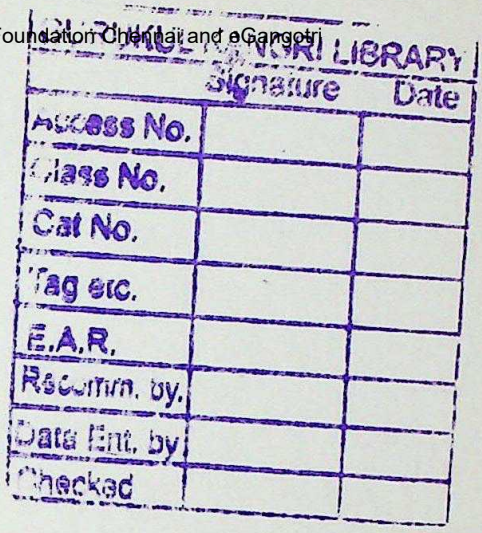

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

शिक्षा: एम. एस. सी.

8-12-1894 से 8-4-1989

लेखक की वेद, उपनिषद, दर्शन एवं वैदिक विज्ञान पर प्रमुख रचनाएं

हिन्दी साहित्य सदन
www.hindisahityasadan.com
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110 005, फोन : 23553624, 23551344
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar